महारामायण

दूसरा अवधखण्ड

(महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज कृत)

—:०:—

सम्पादक—

नन्दू भाई

निज़ामाबाद (दक्षिण)

—:०:—

अ० स० सम्पादक—

देवीचरन मीतल

लेखराजनगर, अलीगढ़

—❀—

प्रकाशक—

नन्दू भाई प्रधान

शिव साहित्य प्रकाशन मंडल,

पो० दयाल नगर, अलीगढ़ ।

द्वितीय संस्करण | सं० शाका १८८५

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य १॥)प्रति

विषय-सूची

द्वितीय अवध खण्ड

प्रथम भाग

पहिला समुल्ला-राम ब्रह्म के अवतार थे १७५
दूसरा ,, युवराज पद विचार १८०
तीसरा ,, स्वर्ग में सभा और देवताओंमें खलबली १८३
चौथा ,, हमारे अपने प्रश्नोत्तर १८७
पांचवां ,, सरस्वती मंथरा १८९
छटवां ,, कोप भवन १९५
सातवाँ ,, राम-दशरथ २००
आठवां ,, नगर में कुहराम मच गया २०२
नवां ,, राम कौशिल्या २०५
दसवाँ ,, राम सुमित्रा २०७
ग्यारहवां ,, राम-सीता २०८
बारहवाँ ,, राम-लक्ष्मण २१३
तेरहवाँ ,, लक्ष्मण-सुमित्रा २१४
चौदहवाँ ,, राम-दशरथ २१५
पन्द्रहवाँ ,, राम-शृङ्गपुर २१७
सोलहवां ,, राम-निषाद २१८
सत्रहवां ,, लक्ष्मण-निषाद २२२

द्वितीय भाग

पहिला समुल्लास गंगा पार जाना २२६
दूसरा ,, राम-भरद्वाज संवाद २२८
तीसरा ,, राम-भरद्वाज संवाद २३१
चौथा ,, राम बाल्मीकि सम्वाद २३५
पाँचवाँ ,, चित्रकूट २४१ क

तृतीय भाग

पहिला समुल्लास दशरथ की दशा २४४ क
दूसरा ,, श्रवण की कहानी और दशरथ की मृत्यु २४६ क
तीसरा ,, अयोध्या में कुहराम २५२ क
चौथा ,, भरत आगमन २५५
पाँचवाँ ,, भरत कौशिल्या २५९
छटा ,, भरत और राम दर्शन की इच्छा २६२

चतुर्थ भाग

पहिला ,, भरत का राम दर्शन के लिये बन को जाना २६५
दूसरा ,, लक्ष्मणकी बेचैनी २६९
तीसरा ,, बिछुड़े हुओं का मिलाप २७१ क
चौथा ,, पहुनाई २७६ क
पांचवां ,, भरत-राम सम्वाद २८०क
छटवाँ ,, देव लीला २८८ क
सातवाँ ,, भरत का अयोध्या की ओर लौट जाना २८९ व

ओ३म् भुवः

महारामायण

द्वितीय अवध खण्ड

ओ३म् भुवः

प्रथम भाग

पहिला समुल्लास

राम ब्रह्म के अवतार थे

राम ब्रह्म के अवतार थे। निःसन्देह ब्रह्म के अवतार थे। मुझे उनके ब्रह्म के अवतार होने में कोई भी संशय नहीं और किसी को हो तो हुआ करे। संसार में अनेक विचार, अनेक बुद्धि, अनेक मन और अनेक चित्त के मनुष्य होते हैं। मैं सब की नहीं कहता। अपनी कहता हूं। क्यों ऐसा कहता हूँ, इसका विस्तार आगे आता चलेगा।

संसार में एक आता है, दूसरा जाता है। एक दूसरे की

जगह ले लेता है। एक राजा मरा, दूसरा उसकी जगह सिंहासन पर बैठा। एक महन्त गया दूसरे को गद्दी दी गई। एक कर्मचारी के चले जाने पर दूसरा उसकी जगह नियत किया जाता है।

तुमने देख लिया परशुराम राम को देखते ही तेजहत और तेजहीन हो गये। वह भी अवतार थे। सारे प्राणियों के समान अवतार भी काल के आधीन होते हैं। हाँ! इनकी आधीनता साधारण जीव जन्तुओं के समान नहीं होती। लेकिन यह भी काल के जगत् में आकर काल के नियम का उल्लंघन नहीं करते। और यह आते क्यों हैं? उसी नियम के उद्धार और सुधार के लिये यह प्रगट होते हैं। आए, काम किया और चले गये।

काल चक्र में भूत, भविष्य और वर्त्तमान तीनों रहते हैं। यह तीनों उस चक्र की कड़ियाँ हैं। चक्र रात दिन चला करता है। कभी ऊपर जाता है, कभी बीच में आता है और कभी नीचे जाता है। यहाँ भी ऊपर, बीच और नीचे का प्रबन्ध है।

ऐसा क्यों है? इसका कारण यह है कि काल का जगत त्रिगुणात्मक है। यहां तीन गुण रात दिन काम करते रहते हैं। गुण को और कुछ न समझो। गुण नाम है प्रकृति का। प्रकृति ही को गुण कहते हैं। संसारी विद्याओं की दृष्टि से गुण और गुणी के भेद में पड़े तो भूले, भटके, बहके और भ्रमे। गुण प्रकृति है और प्रकृति गुण है। यह प्रकृति और गुण तीन रूप वाले हैं। एक को कहते हैं आधार, दूसरे का नाम है धार और जहां यह धार ठहरती है वह स्थल आधार है।

एक है 'सत', दूसरा है 'रज' और तीसरा है 'तम'। जब सृष्टि में यह रूपाकार होते हैं तो इन्हीं में से सत 'विष्णु', रज 'ब्रह्मा' और शिव 'तम' बनते हैं। विष्णु सत्याकार, ब्रह्मा रजा-

कार और शिव तमाकार हैं।

अब इन तीनों पर विचार करोगे तो यह भी तीन-तीन अंङ्गों वाले प्रतीत होंगे। यह भी काल के नियम के अन्तर्गत हैं।

इनका भी झगड़ा छोड़ो। अपने ही शरीर पर दृष्टि डालो। यह भी तीन अङ्गोंवाला प्रतीत होगा—सिर, पेट, पांव। अजी एक उँगली को देखो। सब में तीन तीन भाग दृष्टिगोचर होंगे। हाथ के तीन टुकड़े, पाँव के तीन टुकड़े, पेट के तीन टुकड़े और सिर पैर के भी तीन तीन टुकड़े तुम्हें दिखाई देंगे।

त्रिगुणात्मक जगत् में हर जगह तीन तीन का प्रबन्ध सब में दिखाई देगा—

तीन में है तीन ही का तीन खेल,
देखो तिल के गाछ में तिल गाछ तेल॥
खेलते हैं विष्णु ब्रह्मा और महेश,
खेलते हैं चन्द्र तारे और दिनेश॥
तीन वर्ण और देखो अपने वेद तीन,
तीन में हैं तीन गुण और भेद तीन॥
देख लो तुम वस्तु देश और काल को,
देख लो तुम हड्डी मांस और खाल को॥
सृष्टि लय और स्थिति में तीन तीन,
स्वप्न जाग्रति सुषुप्ति हैं तीन तीन॥

यह कारण है कि ब्रह्मा के अवतार तक काल के आधीन रक्खे गये हैं। नहीं तो काल जगत् की सृष्टि का प्रबन्ध न चलता।

परशुराम गये, राम आये। विश्वामित्र निःसन्देह परशुराम के पद छीनने और राम को उनकी जगह दिलाने के लिये गये थे। उन्हें इसका गुमान नहीं था और साथ ही वह अज्ञानी भी नहीं थे लेकिन ठीक किसी बात का पता नहीं था।

हमारे अपने जीवन में ऐसा ही हुआ करता है। क्या

होगा, क्या न होगा, इसे कौन जानता है। कोई भी नहीं जानता। हां! मन के अन्तर्गत एक प्राकृतिक कुरेद रहती है जो बराबर लिये चली जाती है। वह कहां, किधर और क्यों लिये जा रही है जल्द इसका ज्ञान नहीं होता। ज्ञान कुछ कुछ उस समय होता है जब जीवन का रास्ता थोड़ा सा चल लिया जाता है।

ऋषि, मुनि, नक्षत्र, चांद-सूर्य, देवी देवता सब इसी कुरेद के रस्से से बँधे हुए हैं। ऋषि कहत हैं "मन्त्रद्दष्टा या काम के प्रबन्ध के देखने वालों को", जो हर एक मंडलियों में बँधे हुए मंडलीक हो रहे हैं। अपने चक्र के बाहर नहीं जा सकते। इनकी गिनती सात बताई गई हैं। वह सप्त ऋषि कहलाते हैं। प्रकृति के सात तत्त्व काम में लगे रहते हैं। उनकी देख-भाल, जाँच-परताल सप्त ऋषियों से सम्बन्धित है। मुनि चुपचाप काम करने वालों का नाम है। यह बोलते नहीं, काम करते हैं। यह भी सात ही हैं। देवी देवता प्रकृति के उन सात दिव्य शक्तियों के नाम हैं जो बद्ध और मंडलीक हैं और चलते फिरते होते हुये भी काम में लगे रहते हैं। यह भी सात ही हैं- मित्र, वरुण, अर्यमन, इन्द्र, बृहस्पति, विष्णु, रुरुक्रम। ऋग्वेद के इस मंत्र में उनकी गिनती आती है:—

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्नो इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो बिष्णु रुरुक्रमः॥

नक्षत्र भी सात हैं। सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि।

इसी प्रकार सप्त लोक, सप्त सिंधु, सप्त सूर्य इत्यादि को भी समझ लो। यह सबके सब बद्ध और मंडलीक हैं। इनके यहाँ बन्धन और मुक्ति का प्रश्न नहीं उठता। यह प्रश्न केवल मनुष्य के लिये है जो सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ है--

जानते हैं, जानकर भी, जानने वाले नहीं।
मानते हैं, मानकर भी, मानने वाले नहीं॥
क्या कहें, कैसे कहें, क्योंकर कहें हम अपना भेद।
हम को है पहिचान, और पहिचानने वाले नहीं॥
मन में अपने देखते हैं, है छुपी कोई कुरेद।
सबका है अनुमान, हम अनुमानने वाले नहीं॥

विश्वामित्र लेजाने को तो राम को जनकपुर लेगये। सीता के स्वयम्बर में सम्मिलित किया, धनुष तोड़ने की आज्ञा दी, सिखाया, पढ़ाया सब कुछ किया। जयमाला पहिनाने का दृश्य देखा। परशुराम और लक्ष्मण के संवाद को भी सुना। उन्हें पहिले से भी कुछ २ राम के ब्रह्म अवतार होने की समझ थी। लेकिन यह समझ उस समय पूरी हुई जब परशुराम ने राम को अपना धनुष थमाया और राम का प्रभाव देख कर उन्हें अपना शीस झुकाते हुये पाया। वर्त्तमान कर्मचर्य्य की परिभाषा में राम ने अवतार पद का चार्ज लिया और परशुराम ने चार्ज दिया।

परशुराम और थे और राम और थे। परशुराम अधूरे थे, एक दृष्टि से राम पूरे थे। परशुराम ब्रह्मचारी थे, राम गृहस्थ आश्रम में आगये थे। जिसके स्त्री नहीं है वह लाख पण्डित और सयाना हो, वह संसार की गति क्या जान सकता है! उसे प्रेम की समझ क्या और कैसे आयेगी? वह तो केवल बचपन की लीला का जीवन है। संसार के जीवन का आरम्भ उस समय होता है जब विवाह हो जाता है। पुरुष प्रकृति से मिलता है, नर और नारी का संयोग होता है, यह राजा और वह रानी ठहरती है और मनुष्य जगत् का भार इन के सिर पर आता है और यह मनुष्य जैसी लीला करने लग जाते हैं।

राम ब्रह्म के अवतार थे। बार बार कहता हूँ कि वे ब्रह्म

के अवतार थे। बुद्धि पूर्वक उन्होंने मच्छ, कच्छ, नृसिंह, बावन और परशुराम के जीवन की कड़ियों को समाप्त किया। राम हुए, गृहस्थी बने। गृहस्थ धर्म की मर्यादा का पूर्ण रीति से पालन किया और मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए।

यह कार्य राम ने कब और कैसे किया, यह वृत्तान्त उनके अवध खंड के अन्त तक के चरित्रों पर विचार करने से समझ में आयेगा।

अवध कहते हैं अवधि (हद) को। अबध कहते हैं सुरति (तवज्जह) को। अवधि कहते हैं 'प्रतिज्ञा को' 'अव' पहल और 'ध' (धारण करना) यह अवध है।

राम इस जीवन में सुरतिधारी, प्रतिज्ञाधारी और धारणाधारी बने।

अब कथा प्रसंग सुनो।

दूसरा समुल्लास

युवराज पद विचार

दस इन्द्रियों के दस रथ के आसक्त शरीरधारी दशरथ के आनन्द की कुछ सीमा नहीं रही। घर भर गया, पुत्र हुए, पुत्र बहू घर में आईं। गृहस्थी का सुख इन्हीं बातों में है। वह और उसकी रानियां सुन्दर जोड़ियों को देखकर सुख के समुद्र में डुबकियां लगाने लगीं। लड़के अच्छे, सुशील, आज्ञाकारी, धर्म परायण! उनकी स्त्रियाँ धर्मात्मा, पतिव्रता, सास ससुर की सेवा करने वाली! अब और क्या चाहिये!

घर बना मंगलभवन, मंगल की सुख की खान था।
मंगल इसका नाम रूप और मंगल उसकी जान था॥
मंगला मुख, सर्वदा सुख, मंगलम् मंगल सदा।
रात दिन था हर्ष अरु, नित्य मंगल गान था॥

राम, लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न चारों ही मंगल बने।
मंगल अब दशरथ का बल, पराक्रम और अवसान था॥
था इधर मंगल, उधर मंगल, उसी की धूम थी।
धर्म मंगल, कर्म मंगल, दक्षिणा और दान था॥

सब के अन्तःकरण में इच्छा प्रगट हुई कि क्या अच्छा हो कि अपने जीतेजी सुधि बुधि के होते हुए यह दशरथ राम को युवराज पदवी देदें। तब प्रजा और अधिक सुखी होजायगी। एक मुँह से बात निकली दस कानों में गई, दस से बीस और बीस से सैकड़ों और हजारों तक पहुँची। सारे देश में फैल गई। सब में इसकी चर्चा होने लगी।

आधार से जब धार निकलती है तो उसके प्रवाह को कौन रोक सक्ता है? सिर की शिखा से जब नस और नाड़ियों के रूप में सूत का ताना बाना फैलता है तो उसकी रोक टोक और रोक थाम कौन कर सक्ता है! यह सामर्थ्य किसी में नहीं है:--

धार जब आधार से निकली, हुई वह सहस धार।
सूत में होते हैं जैसे, सूत ही के तार तार॥ १॥
धार सत्याकार होकर, जब तपाकारी बनी।
उसमें शून्याकार है, और है उसी में ओंकार॥
जगत् की रचना में, द्वन्दाकार ही का है प्रबन्ध।
एक से जब दो हुए, दो से लक्ष और हजार॥
त्वम् से तत् है, त्वम् पदम् और त्व पदम्!
तत्व है, तत्वोमसि, इसका करो साक्षात्कार॥
अपने तन में धारलो, तारों का तुम यज्ञोपवीत।
ईड़ा, पिंगला, सुषुमना, तीनों का हो मन में विचार॥

कौशल्या ने सुनी। दशरथ से कहा। दशरथ ने वसिष्ट से सम्मति ली। वह बोले—"राम सुयोग्य पुत्र हैं, उनके युवराज होने में राज का कल्याण है। आप अवश्य उन्हें युवराज पद

देदीजिये। मैं इस विचार में आप से सहमत हूँ। "सारे मन्त्रियों ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। फिर क्या था! दशरथ ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। वशिष्ठ ने कहा-"कल का दिन बहुत शुभ है। कल ही राम का राजतिलक हो।" श्री दशरथ ने कर्मचारियों को बुलाकर आज्ञादी-"सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया जाय कि कल दुपहर के समय राम अवध के युवराज बनाये जायेंगे। नगर की शोभा बढ़ाई जाय और आज सब जगह सब के घरों में बन्दनवार बांधे जांय, अच्छी रोशनी की जाय, फल-फूल, बेल-पत्र बहुतायत से एकत्रित किये जाँय।"

मुंह खोलने की देर थी। राज्यआज्ञा महा आज्ञा। 'राज वाक्यम् जनार्दनम्'। सारे नगर में धूम मच गई। सजावट का प्रबन्ध किया गया। सायंकाल के समय तक अयोध्यापुरी सूर्य मण्डल के समान जगमगा उठी। दीपावली का दृश्य आँखों के सामने आगया। हर जगह बाजे बजने लगे। सभायें हुईं और धूम धाम होने लगी।

राम सब को प्यारे थे। इनका शीतल स्वभाव विचित्र था। जिसको एक दृष्टि से देखते थे वह मोहित हो जाता था। बात करते समय मुँह से फूल झड़ते थे। इनका एक भी विरोधी नहीं था।

सब लोग बारी बारी पर बधाई (ऐडरैस) देने आये। राम ने सब का सम्मान किया। यह स्वाभाविक उदासीन वृति वाले थे। बधाई के उत्तर में कहा--"मेरे मन में किसी प्रकार की इच्छा नहीं है। मैं केवल जगत् की सेवा का भार अपने सिर पर उठाने आया हूं। युवराज हुआ तो क्या! नहीं हुआ तो क्या! मेरा धर्म सेवा करना है। यही मेरे जीवन का आदर्श है। आप मेरा सम्मान करते हैं। मैं आपका कृतज्ञ हूँ। ऐसा हो कि हम और आप मिल मिला कर ऐसा काम करें कि

प्रजा सुखी हो। दुख किसी को न सतावे। आप हमारे साथ साथ रह कर हमारे काम में हाथ बँटावें तब आप के इन सन्मान पत्रों के भेंट देने का मन्तव्य पूर्ण होगा। यों तो राज दरबार में ऐसा ही होता रहता है।

सब राम की बातों को सुन कर मग्न हो हो कर अपने अपने घरों को गये।

तीसरा समुल्लास

स्वर्ग में सभा और देवताओं में खलबली

तुमको मैं बराबर बताता चला आ रहा हूँ कि देवता दिव्य शक्तियों को कहते हैं जो प्रकृति के प्रबन्ध में लगी रहती हैं। यह शब्द संस्कृत धातु 'दिव्' (खेलने) से बना है। देवता खुल खेलना चाहते हैं। बन्धन में आना उन्हें स्वीकृत नहीं है और इनके अतिरिक्त अदेव या असुर वह शक्तियां हैं जो देवताओं को खुल खेलने नहीं देतीं।

तुम कहोगे "क्या यह शरीरधारी हैं?" मैं कहता हूं—"हाँ! यह शरीरधारी हैं। बिना शरीर के कोई शक्ति अपना प्रभाव नहीं दिखा सकती।" तुम देखो, विचारो, सोचो, समझो। किसी काम करने वाली दिव्य शक्ति को बिना शरीर के देखो तो मुझे भी दिखा दो। कर्म जब होगा शरीर से होगा। विचार जब बनेगा मन ही से बनेगा। चाहे तुम मानो या न मानो। मैं मानता हूँ, मान गया हूं, मुझे सन्देह नहीं रहा। इसलिये एक नहीं हजारों मुँह से कहने के लिये तैयार हूँ कि वह शरीरधारी हैं।

ब्रह्म आप शरीरधारी है। साहस हो तो मेरी बात का खंडन

करो। यह ब्रह्माण्ड इसी ब्रह्म का शरीर है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश सब शरीरधारी हैं। इसी प्रकार आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सबके शरीर हैं। ये बिना शरीर के होते तो कभी कर्म न कर सकते।

जब देवताओं ने सुना कि राम अवध के युवराज होने वाले हैं, यह दुःखी हुये। दशरथ को बुरा भला कहने लगे। खलबली पड़ गई। सभा की। प्रजापति ब्रह्मा सभापति बनाये गये। विष्णु की सेना देवता हैं, यह अपनी सेना लाये। शिव की सेना भूत (पांच तत्व) वेताल, धुन, सुर, ताल। ब्रह्मा की सेना जीव जन्तुओं के बच्चों का समूह। यह भी आये। ठठ के ठठ देवता इकट्ठा हुये।

ब्रह्मा ने कहा--"राम जिस काम के लिये प्रकट हुये हैं उसमें विघ्न पड़ने वाला दिखाई देता है।"

शिव--"ऐसा कभी न होने पावे।"

विष्णु—"मैं अपना सारा बल लगा दूँगा। मेरे देवता राक्षस (देवी सम्प्रदाय वाले) बन्दर और रीछ बनकर राम की सहायता करेंगे।"

ब्रह्मा--"अच्छा! तुम सब लोग कह चलो तुमको क्या हानि पहुँच रही है और साथ साथ उसके दूर करने का उपाय भी सोचा जाए।"

चमकता और जगमगाता हुआ इन्द्र सामने आया—'मैं दिव्य शक्ति वाला देवता हूं। खुल खेलना चाहता हूं। रावण के लड़के मेघनाथ ने मुझे बांध लिया। मैं उसके आधीन होगया। मैं बेकाम तो रहना नहीं चाहता। काम करूँ और मेरा काम खेल खेल में हो। मनुष्य समझ से काम ले। लेकिन यह क्या, रावण और इन्द्रजीत ने मिलकर अपने कर्मचारियों द्वारा

सैकड़ों प्रकार की कलें बनवाईं, उनमें मुझे बाँध लिया। लाखों काम लेता है। दिन को खेत मैं जोतूँ, पङ्खा मैं करूँ, सारी लंका को मैं रात्रि के समय प्रकाश दिया करूँ। जो काम हजार मनुष्य करते थे वह एक कल से हो जाता है। शेष बेकार पड़े रहते हैं और पृथ्वी में सब जगह झगड़ा बखेड़ा मचा रहता है।"

फिर वायु आया—"मुझे भी उसने कारागार में डाल रक्खा है। जब जैसा चाहता है कलों के बल से मुझे मोटा पतला बनाकर अपने शत्रुओं को नष्ट भ्रष्ट कर देता है। मैं साधारण रीति में सब के जीवन का कारण हूँ। उसने लंका के पहाड़ में ऊपर, नीचे, बीच में नगर बसाये, कल लगाये, उनके घरों में शुद्ध वायु बनाकर मुझे भेजता है और उनसे कर लेता है और आकाश में इसके पुष्प विमानों को चलाना पड़ता है।"

वरुण (जल के देवता) ने कहा—"मेरी बड़ी दुर्गति है। मैं अपनी प्रकृति के अनुसार नहीं हूँ। जहां चाहता हूं, रहने नहीं पाता। रावण अपने कलों द्वारा मुझे ऊपर नीचे ले जाता है। साधारण पानी किसी को नहीं लेने देता। शत्रु आया। रावण ने मुझे बड़ी बाढ़ बनाकर शत्रु के नष्ट भ्रष्ट करने को भेजा। वह जहां चाहता है मुझे ले जाता है। मैं सर्वाङ्ग से रावण के वशीभूत हो गया।"

अग्नि देवता बोला—'न कहीं यज्ञ है, न धर्म है। मैं जगत् का पुरोहित कहलाता हूँ। रावण के आधीन हो कर उसके शत्रुओं को हजारों और लाखों मीलों की दूरी से जलाता हूँ। यह मेरी पुरोहिताई का धर्म हो रहा है। इसकी शतघ्नी (तोप) को एक एक पल में हजारों बार दागना और शत्रुओं को मारना पड़ता है।"

पृथ्वी रोती हुई आई—"मैं महा दुखी हूँ। मेरी बनस्पति,

घास-फूँस, भंग-धतूरा सब को जला जला कर विष की धूली बनाता है और अपनी शतघ्नी द्वारा शत्रुओं की सेना में बरसा कर उन्मत्त कर देता है और हम से अनर्थ करा रहा है। उसने ऐसे चूरण बना रक्खे हैं कि चाहे तो लाखों और करोड़ों जीव जन्तुओं को पल में प्राणहत करदे और सृष्टि का तख्ता पलट दे"

सूर्य देवता अपनी किरणों के आँसू बरसाता हुआ आया। मैं रावण का बवर्ची बना हूं, इसका पानी गरम करता हूं, मेरी किरणों से उसका आहार पकता है। वह चाहे तो दिन को रात कर दे। धूप काल में वह मेरी धूप को समेट देता है और लङ्का को ठण्डी बना देता है और शरद ऋतु में अपने देश को गरम कर लेता है। वह स्वर्ग में सीढ़ी लगा कर आने वाला है कि मेरी शक्तियों की तोल माप करे। अभी तक उधर उसका ध्यान नहीं गया है। यही दशा मेरे साथ चन्द्रमा की भी है।"

समुद्र आया। महिमा घटी समुद्र की, रावण बसा पड़ोस। मेरी दुर्गति जो कुछ हो रही है, उसे कौन जान सकता है! सारा समुद्र खोखला कर दिया गया। हर जगह उसमें अनगिनत कलें बना रक्खी हैं। पक्षी पखेरू तक उड़ते हुए समुद्र की राह से लङ्का में नहीं जा सकते। इनकी छाया के पड़ते ही कलों के पुरजे हिलने लगते हैं। उनसे आकर्षण शक्ति उत्पन्न होती है और यह शक्ति उनको खींचकर समुद्र में डुबा देती है। लाखों ऐसे जीव-जन्तु प्रति दिन मरते खिपते हैं। देवताओं के आकाशी रथ और विमान तक उधर नहीं जा सकते। अब रावण इस उपाय में लगा है कि समुद्र के जल को मीठा कर दे। ऐसा हुआ तो मेरी मृत्यु समझो।

एक एक करके करोड़ों देवता इकट्ठे हो गए। ब्रह्मा, विष्णु और महेश घबराए। किस किस की बात सुनी जाय! इतना

समय नहीं रहा है। बातों में कुछ नहीं धरा है। काम करना चाहिए।

और निम्नलिखित प्रस्ताव उस सभा में समर्पण किये गये:-

(१) देवता रीछ, बन्दर और राक्षस बन कर जंगलों में रहें और राम के आने के निरीक्षण में लगे रहें।

(२) राम को किसी बात का पता न लगने पावे, वह अँधेरे में रहें। किसी को कानों कान यह समाचार न मिले कि देवता रावण के विरुद्ध द्रोह कर रहे हैं। वह भी न जानने पायें।

(३) कोई देवी या देवता ढूँढ़ो जो मृत्युलोक में जाकर किसी ऐसे मनुष्य पर अपना प्रभाव डाले जो राम को युवराज न होने दे।

यह तीनों प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास होगये और देवताओं की सभा समाप्त हो गई।

चौथा समुल्लास

हमारे अपने प्रश्नोत्तर

सम्भव है कि तुम पूछो—"यह देवी देवता जड़ हैं कि चेतन हैं?" मैं कहूँगा कि (१) ये प्रश्न बे ठौर ठिकाने के हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों ही देवता इस जगत् के प्रबन्धकर्त्ता हैं। जगत् त्रिगुणात्मक है। यह तीनों गुणों के रूपक हैं। तुम आप सोच सकते हो कि जगत् का प्रबन्ध चेतन कर सकता है या जड़? (२) जड़ चेतन दोनों उपेक्षिक शब्द हैं। यहाँ वास्तव में न कोई जड़ है, न चेतन है। जिसको तुम चलते फिरते देखते हो उसे चेतन और जिसे चलते फिरते नहीं पाते

उसे जड़ कहते हो । यह केवल उपेक्षा मात्र है और उपेक्षिक मन्तव्य सदा उपेक्षा के स्थल में हुआ करता है। उपेक्षा को उड़ा दो फिर न कोई जड़ है, न चेतन हैं जो है वह है। (३) यदि तुम यह कहो कि वनस्पति इत्यादि में चेतन शक्ति नहीं है तो मैं कहूँगा कि यह तुम्हारी अत्यन्त भूल है। इनमें कौन कहे बल्कि कंकड़ पत्थर तक में उनकी जीवन शक्ति के अनुसार चेतनता है। जिसे तुम चेतनता कहते हो उसके दो अंग हैं— एक बढ़ना, दूसरा सोचना। बनस्पति और कंकड़ पत्थर सब के सब बढ़ते, सोचते हैं। आज जो उनकी दशा है वह दो चार महीना या दो चार वर्ष पश्चात् नहीं रहेगी। इसका कारण यह है कि वह बढ़ते और सोचते रहते हैं। लाजवन्ती के छोटे पौधे को देख कर अनुमान करलो (४) यह ब्रह्म क्या है जिसे तुमने अपना इष्ट मान रक्खा है ? यह जड़ है या चेतन है ? तुम कहोगे कि यह चेतन है। यदि ब्रह्म चेतन है तो उसका जगत् जड़ कैसे होगा ? यह भी जब होगा चेतन ही होगा। ब्रह्म वह है जिसमें ब्रह (बढ़ना) और मनन (सोचना) हो । जगत् ब्रह्ममय है। इसमें जो कुछ है वह सब ब्रह्म ही ब्रह्म है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। ब्रह्मा से लेकर घास के तिनके तक सब बढ़ने और सोचने वाले ही हैं जो ब्रह्म का गुण, कर्म और स्वभाव है। जैसा ब्रह्म वैसा ही उसका जगत्।

सम्भव है तुम पूछो कि देवी देवता बोलते हैं या नहीं ? यदि पहिले बोलते थे तो अब क्यों नहीं बोलते ? मैं कहूँगा कि देवी देवता यदि पहिले बोलते थे, तो अब भी बोलते हैं। हाँ ! उनकी बोली को कोई समझने वाला हो तो। बोलना क्या है ? केवल अपने अस्तित्व की सत्ता को प्रगट कर देना है। कौन-सी ऐसा वस्तु संसार में है जो अपनी सत्ता को प्रगट नहीं कर रही है ? सब ही तो ऐसा कर रहे हैं। तुम इसे न समझो यह

दूसरी बात है:—

ब्रह्म है आधार सब का, ब्रह्म ही में धार है।
है शिखा जब ब्रह्म सूत्रों, का भी वह करतार है ॥१॥
ब्रह्म सत है ब्रह्म चित है, ब्रह्म से आनन्दगति।
ब्रह्म आनन्दाकार, चेताकार सत्याकार है ॥२॥
ब्रह्ममय है जगत् और यह जगत् उसका रूप है।
ब्रह्म ही इस नाम रूप के जगत् का विस्तार है ॥३॥

पाँचवाँ समुल्लास

सरस्वती और मन्थरा

रात का समय आया। अयोध्या में दीपावली का उत्सव मनाया गया। हर जगह नाच-रंग की धूम थी। सब सुखी थे कि कल राम के युवराज तिलक का दृश्य देखने में आयगा और राज-काज का प्रबन्ध नवयुवक राम के हाथों में सौंपा जायगा। लेकिन इस संसार की गति बड़ी विचित्र है। पल के पल में क्या हो जायगा, इसे कोई नहीं जानता और न जान सकता है। प्रकृति की शक्तियां आश्चर्यजनक खेल खेला करती हैं। देवासुर संग्राम की रणभूमि में किसे विजय और किसे पराजय प्राप्त होगी, इस का जानना हमारी बुद्धि के आधीन नहीं रक्खा गया।

मन्थरा कैकेई की दासी हाट में कुछ मोल लेने आई हुई थी। वह कुबड़ी थी। विचार की क्रूर थी। देवताओं की प्रेरणा से सरस्वती शिकार के ताक में लग रही थी। इन्द्र ने अच्छे प्रकार उसे समझा रक्खा था। सरस्वती की दृष्टि मन्थरा पर पड़ी। काम का हथियार मिल गया। वह उसके सिर पर भूत बन कर चढ़ बैठी और क्षण मात्र में उसने उसकी बुद्धि को

मन्थरा ने पूछा—"नगर में आज यह दीपावली क्यों हो रही है ? क्यों बहुत बड़ा उत्सव मनाया जारहा है ?"

लोगों ने कहा--"बावली ! तू रनवास में रहती है और महारानी कैकेई की दासी है और तू यह भी नहीं जानती कि कल रामचन्द्र को युवराज की पदवी दी जायगी और उनका अभिषेक होगा।"

मन्थरा--'झूठी बात ! असम्भव ! रनवास में तो कानों कान किसी ने नहीं सुना। कोई बात होती तो मैंने अवश्य सुनी होती।"

लोग हँसे। जैसे तू कुबड़ी है वैसे ही तेरी बुद्धि भी कुबड़ी है। कुबड़ी के कान सम्भवतः कुबड़े ही होंगे। तू निपट अनाड़ी है जो इतना भी नहीं जानती।

मन्थरा चिढ़ गई। एक तो वह यों ही बुरे स्वभाव की थी, दूसरे हाट वालों की हँसी दिल्लगी और अनुचित असह्य बातों को सुनकर उसका चित्त और भी बिगड़ गया। 'एक तो करेला दूसरे नीम चढ़ा'। करेला यों ही कड़वा होता है और नीम पर चढ़ने से तो उसका कड़वापन सौगुना बढ़ जाता है। हाट से लौटी और मन ही मन में सोचती गई—"विधाता वाम है। राजमहल की दासी होने पर भी मेरा कहीं मान और सम्मान नहीं है। हाट के छोटे छोटे बनिए मेरे अपमान का साहस करते हैं। अच्छा क्या हुआ ! कुबड़ी हूँ तो कुबड़ी ही सही। इस राजतिलक के उत्सव को भंग न कर दिया तो मंथरा नहीं ! महल की रानियां भी मुझ कतराती और भेद की बातें छिपाती हैं"।

वह कैकेई के महल में आई। थर थर कांपती हुई। होट फड़क रहे थे और आँख लाल अंगारा बन रही थीं।

कैकेई ने उसकी दशा देखी, पूछा—"तुझे क्या होगया ?

या कहीं सिर पर भूत तो नहीं सवार हो गया जो यों ही काँपती
ांपती है !"

मन्थरा –"कुबड़ी को छोड़ कर भूत प्रेत किसके सिर पर
लने आयेंगे। अँगहीन प्राणी का बलिदान तो देवी देवताओं
ो भी नहीं चढ़ता। भला और नहीं तो भूत पिशाच ही मुझे
ीकार कर लेंगे, यही सही !"

कैकेई हँसी ! "तुझे हो क्या गया जो ऐसी उखड़ी उखड़ी
तें करती है ?"

मन्थरा--"अभी हँसती हो और थोड़ी देर पीछे रोती
करोगी।"

कैकेई-"चुप ! मुँह सँभाल कर बात कर नहीं तो इस जीभ
ो कटवा दूँगी। रोयें मेरे शत्रु। मैं क्यों रोने लगी !"

मन्थरा – "मेरी ज़बान पहिले कटवालो पीछे देखा जायगा।
इसी के योग्य हूँ।"

कैकेई –"अरे ! तू कुछ कहती भी है या यों ही बड़बड़ाती
ेगी।"

मन्थरा –"मेरे सिर पर भूत खेल रहा है। रात दिन तुम्हारी
वा करती हूँ और उसके बदले मेरी ज़बान काटी जारही है।
ा बिधाता ! तेरा खेल भी निराला ही है !"

कैकेई–"ले ! ज़बान न कटेगी। बोल ! कुछ कह तो सही !"

मन्थरा -"कहूँ क्या ! कौशल्या ने तुम से आज अपना
दला लेलिया। बरसों से ताक में लग रही थी ! अवसर पाया,
ँव हाथ आया। उनके तो पौबारह होगये, तुम्हारे तीन काने
। किसीने सच कहा है:—

रूप जिसका है बुरा, उसका हुआ नाम बुरा।
चून की सौत बुरी, साझे का सब काम बुरा॥

कौशल्या का नाम सुनना था कि कैकेई के तलुओं में आग

लग गई। पाँव के तले की मिट्टी खिसकने लगी।

कैकेई—"क्या हुआ ?"

मन्थरा—"हुआ क्या ? जो होने वाला था वही हुआ और क्या होता ! कल राम का तिलक होने वाला है। कौशल्या के घर में बधाई बज रही है।"

कैकेई—"यह तो बड़ा आनन्ददायक समाचार है। राम अपने भाइयों में सब से बड़े हैं, वह बुद्धिमान भी हैं। तिलक तो उनका होना ही है। आज नहीं तो महाराज के पीछे वही तो कौशलराज होंगे। आ ! तेरा मुंह मोतियों से भर दूँ। तूने अच्छा समाचार सुनाया है।"

मन्थरा—"बाहरे तेरा भोलापन ! अभी मेरी ज़बान काटी जारही थी और अब मोतियों से मुंह भरा जायगा। मोती मेरे भाग्य में कहां हैं ! हां ! ज़बान कटते ही लहू लहान हो जायगी और मेरा मुँह लहू से निःसन्देह भर जायगा। बलाये लूँ ! मैं तो अभी से अपना बोरिया बिस्तर समेटती हूँ।"

कैकई ने सोचा मन्थरा के मन में कोई और बात है जिसे उसने अब तक नहीं कहा। पूछा—"तू स्पष्ट बात क्यों नहीं कहती ?"

मन्थरा—"तुम बड़ी भोली भाली हो। तुमको घमंड है कि महाराज तुम पर रीझे हुये हैं। यह सब झूठ है। राजा तो कौशल्या के हाथ के खिलौने हैं। यह भी उसी ने सिखा पढ़ा रक्खा है जो तुम्हारे पास आकर नित नई चिकनी चुपड़ी बातें करते हैं। वह तो मौम की नाक हैं। कौशल्या जिधर चाहती है उन्हें मोड़ती रहती है। यही न देखो कि विवाह होते ही भरत को काश्मीर नाना के घर भिजवा दिया। तुमको पता नहीं दिया कि राम का तिलक होगा। वह डरती है कि कहीं भरत राम के विरोध में सिर न उठावें और तुमको किसी

ने अब तक यह समाचार भी नहीं सुनाया।"

कैकेई—"यह सब तेरी मिथ्या कल्पना है! कोई बात नहीं है।"

मन्थरा—"तो मुझे जाने दीजिये मैं और जगह जाकर अपना मुंह काला करूं। राम कौशल राज हों, महलों में कौशल्या का राज हो, भरत मारे मारे फिरें! मुझ से यह न देखा जायगा। तुमने पहले ही कह दिया है कि मेरे सिर पर भूत चढ़ा है। अब तुम्हारे महल की दशा क्या होगी? यहां डांकनियां, सांकनियाँ नाचेंगी और तुमको उनका खेल देखना पड़ेगा। कौशल्या दशरथ को तो सौ सौ नाच नचाती ही हैं तुम को भी नये निराले नाच नाचने पड़ेंगे। मैं इसे नहीं देखना चाहती।"

कैकई—"कहती तो तू सच है। फिर क्या करूं जिससे कौशल्या का प्रभाव मिट जाय।"

मन्थरा ने देखा कि उसका जादू प्रभावशाली सिद्ध हुआ। बोली—"यह काम कठिन नहीं है, सरल और सहज है। यों चुटकी बजाते हुये काम निकलेगा और कौशल्या तुम्हारा लोहा मान जायगी।"

कैकेई—"वह उपाय क्या है?"

मन्थरा—"तुमने एक दिन मुझ से कहा था कि राजा ने तुम्हें दो वर दिये हैं। मुझ निगोड़ी को स्मरण नहीं है। तुमने समर भूमि में उनकी सहायता की थी। उन्होंने प्रसन्न होकर तुम से कहा था—"दो वर माँगो।" तुमने कहा था—"जब किसी बात की आवश्यक्ता होगी मैं कहूँगी।" अब उसका समय आगया।

कैकेई—"सच है। राजाजी इन्द्र की ओर से असुरों से लड़ने गये थे। रथ का पहिया भूमि में गिर कर टूट गया। मैंने

अपना हाथ धुरे में डाल दिया। राजा लड़ते रहे और विजय प्राप्त करली। जब वह रथ से उतरे मैंने अपना हाथ निकाल लिया। लहूलहान होगया। उन्होंने मेरी सेवा से प्रसन्न होकर दो बर माँगने की आज्ञा दी थी।"

मन्थरा—"अब वह वर माँगो।"

कैकेई—"क्या मांगू ?"

मन्थरा - 'भरत को राज, राम को बनवास।"

कैकेई--"नहीं ! नहीं !! नहीं !!! यह अनुचित होगा। राम बड़े हैं, राज उन्हीं को मिलना चाहिये। भरत को इसका अधिकार नहीं है ! राम ने मेरा क्या बिगाड़ा है जो उन्हें बनवास दिया जाय। वह मुझे भरत से अधिक प्यारे हैं और कौशल्या से विशेषतर मुझे प्यार करते हैं। यह उपाय अच्छा नहीं है। घर में फूट पड़ जायगी। मैं बदनाम हूँगी। पाप की भागी हूँगी मेरी शत्रु तो कौशल्या है। राम मेरे शत्रु नहीं हैं।"

मन्थरा ने देखा कि इसका जादू उतर रहा है, मुह बना कर बोली—"राम अच्छे, कौशल्या अच्छी ! बुरी मैं ही हूं। होम करते मेरा हाथ जलाया जाता है। सच्ची बात बोलते ज़बान काटी जाती है। मुझे हां में हां मिलाना और असत्य बचन कहना नहीं आता। मैं तो बांदी की बांदी ही रहूँगी, रानी नहीं हूंगी। यह घर न सही दूसरा सही, तुमने मुझे अच्छा पारितोषिक दिया। मैं घर में फूट डालने वाली हुई। कहीं कौशल्या सुन पायें तो अभी मेरी खाल खिंचवालें।"

सरस्वती उसकी जिह्वा पर बैठी थी। वह यह कह रोने लगी और साथ ही महल से चले जाने की धमकी भी दी।

कैकेई—"मैं अन्याय नहीं करना चाहती। राम का राज छीनना नहीं चाहती और कोई उपाय बता दे।"

मन्थरा—"तो राम के लिये केवल चौदह वर्ष का बनवास

और भरत के लिये चौदह वर्ष का राज्य ! यह तो हो सकता है। बारह वर्ष का युग होता है, कौन जाने उस समय तक क्या हो ! कौन राजा, कौन प्रजा ! हां ! कौशल्या का बल टूट जायगा और तुम अखंड और निर्द्वन्द्व राज करोगी।"

कैकेई--"इसमें इतनी हानि नहीं है, सोचने दे।"

मन्थरा—"घड़ी में घर जले और ढाई घड़ी का भद्रा ! कल प्रातः समय राम युवराज हो जाँयँगे। सोचने का समय कहाँ रहा है ! बुद्धिमान मनुष्य अपना काम बनाते हैं। कायर निर्बुद्धि असमंजस में पड़े हुए आगा पीछा देखा करते हैं। इन से कुछ नहीं होता।"

समय समय पर काम कर, समय विरोध और हेत।
फिर पछताये क्या होत है, जब चिड़िया चुग गई खेत ॥

कैकेई—"मैं समझ गई। तू मेरा भला चाहती है, चली जा। रात बहुत होगई। राजाजी आते ही होंगे। मैं कोपभवन में जाती हूँ। बिना काम बनाये हुए इसके बाहर न आऊँगी। भरत की सौगन्द है, जैसा तूने कहा है वैसा ही करूँगी।"

मन्थरा—उठ कर चली गई।

छठा समुल्लास

कोप भवन

उधर मन्थरा ने पीठ फेरी इधर कैकेई ने एक एक करके आभूषण उतारे। जो साड़ी पहिन कर बैठी उसे तन से दूर किया। मैला कुचैला कपड़ा पहन लिया और कुरूप कुबुद्धि, कुवस्त्रधारी बन कर कोप भवन में जाकर नङ्गी पृथ्वी पर लेट रही।

पहिले समय में राजाओं के महलों में एक कोठरी कोप भवन के नाम से बनी रहती थी। जब कोई रानी रूँठती थी तो

उसमें जाकर बैठ रहती और राजे उसे मनाने जाते थे।

दशरथ महल में आये, कैकेई को वहाँ नहीं देखा, पूछा—"रानी कहाँ गई ?" उत्तर दिया गया—"वह कोप भवन में पड़ी हैं।"

कोप भवन का नाम सुनते ही उसका माथा ठिनका। यह सुखी हो रहा था कि राम कल के दिन युवराज होंगे और उस उत्सव को देखकर यह अपने जन्म को सुफल समझेगा। कोप भवन के शब्द से इसके कान खड़े हुए।

यह कोपभवन में आया। देखा कैकेई कुरूपवती बनी हुई सिसक रही है। पास गया। उसके हाथों को पकड़ कर कहने लगा—"प्रिया ! तुझे क्या दुख है ? किस पर कोप है ?"

वह कुछ न बोली। यह उसे मनाने लगा—"किसने तुझे क्लेश दिया, उसे राज से अभी निकाल दूँ। किसने तेरा अपमान किया उसे मरवा दूँ। जो तू कहे मैं करने को उद्यत हूं।"

फिर भी उसने अपने मुँह को नहीं खोला।

दशरथ ने कहा—'अरे! तू बोलती क्यों नहीं ? क्या चाहती है ? मुँह खोल ! तू जो मांगेगी वही दूँगा। जिसे कहे उसे राज दूँ, जिसे कहे उसे देश निकाला दूँ। मुझे तेरा कहना सब प्रकार स्वीकार है।

शिकार आप ही आप फंसता चला आरहा है। यत्न करने की किसे आवश्यकता है।

राज और बनवास के शब्द सुनकर वह तमक उठी। "न देना न लेना। तुम ऐसी ही बातें बनाते रहते हो। किसी को क्या दिया ! हां! लेने के व्यौहार और व्यापार में तुम कुशल और प्रवीण हो।"

दशरथ—"तुमने कब परीक्षा की ? रघुवंशी बचन पालने,

प्रतिज्ञा के निभाने और पन के निभाने के लिये जगत में प्रसिद्ध है—

"रघुकुल रीति यही चलि आई।
प्राण जांय पर बचन न जाई॥"

कैकेई—"मैं कसौटी पर कसे बिना सोने को सोना नहीं कहती।"

दशरथ—"तो सौने को कसौटी पर क्यों नहीं कसती हो? किसने रोक थाम कर रक्खा है?"

कैकेई—"और सोने के बदले वह पीतल निकल गया तो क्या करूंगी! इससे तो चुपचाप रहना ही अच्छा है।"

दशरथ—"फिर तो कहना सुनना व्यर्थ है। मैं इस समय सब कुछ करने और सब कुछ देने को तैयार हूँ। राम की सौगन्द खाता हूँ, जो तू मांगेगी वही दूँगा।"

कैकेई ने आंखें बनाईं। "तुमने पहिले मुझे दो वर दिए थे। स्मरण है कि भूल गये?"

दशरथ हँसा। "याद है। दो क्या तीन मांग ले।"

कैकेई—"दो वर दो और मैं सर्वस्व पागई।"

दशरथ—"अभी मुँह माँगा वर दूँगा। राम की सौगन्द खा चुका हूं।"

कैकेई—"तो राम को चौदह वर्ष का बनवास और भरत को चौदह बर्ष का राज्य दो। यही मेरे दो वर हैं। इनके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं चाहती।"

पके और सूखे हुए नाज के खलियान पर बिजली गिरी। वह जल भुन कर राख होगया। बसी बसाई बस्ती में बाढ़ आई। पानी पानी होगया। घर द्वार सब बह गए। जँगल में आग लगी। वृक्ष, बेल बूटे, घास-फूँस सब जल उठे। यही दशा दशरथ की भी हो गई। देह शिथिल, इन्द्रियां निर्बल, मन दहला

गया। हाय ! हाय !! मनोरथ और कामना का गाछ बढ़ा, लह-लहाया, कोंपलों और पत्तों से लद गया। फूलने और फलने के समय उसकी जड़ में कुल्हाड़ी लगी।

हाय ! हाय !! हाय !!!

कैकई ने जले हुए मन के फफोले पर नोंन छिड़कना आरम्भ किया "वाह महाराज ! क्या भरत आपके लड़के नहीं हैं ? मुझे क्या आप दाम देकर बांदी मोल लाये थे ? वरों को सुनकर मिर्चें क्यों लगी ? आपने समझा था कैकेई गँवार है, गाजर मूली मांगेगी। 'बचन बद्ध होने और प्रतिज्ञा आरूढ़ बनने' की सौगंद खाई थी। अब क्या होगया ! हाय हाय क्यों करने लगे ?'

दशरथ – हाय ! हाय !! हाय !!!

कैकेई—"आप रघु के वंश के मणि कहलाते हैं और यह दशा है ! शिवि ने क्या किया ! हरिश्चन्द्र और शिवि ने कैसे अपने प्रण का निर्वाह किया !

पपीहा पन को ना तजे, तजे तो तन बेकाज।
तन छांड़े तो कुछ नहीं, पन छाड़े है लाज ॥,'

दशरथ—"हाय ! सर्पनी ने मर्म स्थान डस लिया। अब औषधि भी कुछ काम न करेगी।"

कैकेई—" मैं प्रिया से अब सर्पनी बन गई !"

दशरथ—"भरत को मैं राज दे दूँगा। राम को बन न जाने दे। इतना तो कर सकती है ?"

कैकेई—"मैं कौशल्या से अपना बदला लूँगी, बिना बदला लिये न छोड़ूँगी।"

दशरथ—"कौशल्या का कोई दोष नहीं है। उसने मुझ से कभी कुछ नहीं कहा था। अपराध मेरा है। मैंने तेरी सम्मति नहीं ली और तेरे पूछे बिना युवराज पद देना चाहा।"

कैकेई—"क्यों न हो ! तुम साधु और राम और कौशल्या

साधु! संसार में केवल कैकेई और उसका पुत्र भरत दोनों असाधु हैं।"

दशरथ—"कैकेई! तू तो कहा करती थी राम भरत से अधिक प्यारे हैं और अब क्या होगया?"

कैकेई—"मैं राम को बुरा तो नहीं कहती। समय समय की बात है। इस समय मैं ऐसा ही करना चाहती हूँ।"

दशरथ—"मछली पानी के बिना चाहे जीती रहे, जीव-जन्तु वायु न पाकर भी संसार में चाहे रहें, दशरथ बिना राम के नहीं जीवित रह सकता।"

कैकेई—"आप भरत के बिना जी सकते थे तभी उन्हें काशमीर को भेज दिया। मेरे सामने आपका माया जाल नहीं चल सकता। प्रभात होते ही राम बन को नहीं जावें तो मैं प्राण त्याग दूँगी और संसार में आपका अपयश होगा।"

सिर पर दुःख का पहाड़ टूट कर गिर पड़ा। दशरथ चट्टानों की चोट खाकर कुचल गया। शिर उठाने के योग्य नहीं रहा, फिर भी संभल कर बोला—"मेरा सिर लेलो। अभी उतार कर रखदूँगा। राम को बनवास न दो, यह दुःख असह्य होगा।"

कैकेई—"आपने वर दिया था, मैंने वर मांग लिया। सिर नहीं माँगती। उसे अपने धड़ पर रहने दीजिये। राम को बन, भरत को राज यह वर है।"

दशरथ—"राम को राज की इच्छा नहीं है, न भरत ही राज्य के अभिलाषी हैं। वह सुनेंगे तो उन्हें बड़ा दुःख होगा।"

कैकेई—"हिमालय अपनी जगह से टल जाय, सूरज पूरब के बदले पश्चिम से निकले, चन्द्रमा गरम हो जाय, पानी आग और आग पानी बने, पर मैं अपनी बात को कभी न बदलूँगी।"

दशरथ—"अच्छा! जब तक जान में जान है अब अपनी बातों से मेरे मन को दुखी न कर। जो होना था हो गया, हो

कर रहेगा। तेरे सिर पर भूत सवार है और वह मेरा काल है"

यह कह कर दशरथ ने करवट बदली, आंख बन्द करली। प्रार्थना करने लगा—'हे ईश्वर! राम का मन बदल दे, वह मेरी बात न माने या सूरज न निकले और राम बन को न जांय"

लेकिन ऐसा कब होने वाला था!

सातवाँ समुल्लास

राम—दशरथ

पौ फटते ही कुक्कड़ बोलने लगे, कौए काउँ काउँ करने लगे। इधर दशरथ की आँख दुख के कारण नहीं झपकी, उधर अयोध्यावासी राम अभिषेक के उत्सव और सुख देखने के ध्यान में नहीं सोए। दुख की रात पहाड़ होती है और सुख की रात की आयु बहुत थोड़ी होती है।

राम उठे न्हा धोकर संध्या बन्दन किया। वह अपने इष्ट मित्रों से घिर गए।

कर्मचारी मन्त्रीगण इत्यादि राज द्वार पर आए। राजा दशरथ प्रातः काल उठते थे। आज दरबार भवन सूना पड़ा था। सब को आश्चर्य हुआ कि अभिषेक का दिन और महाराज अब तक नहीं आए। सुमन्त मन्त्री था और हाथी, घोड़े, रथ सबका प्रबन्ध इसी के आधीन था। उससे कहा गया—"जाकर महल में देखो कि महाराज अब तक क्यों नहीं उठे?" यह महल में आया। महल कैसा! दशरथ तो कोप भवन में पड़े हुए थे। वह वहां गया। जिससे समाचार पूछता था, वह चुप रहता था। कोई किसी से बात-चीत नहीं करता था। चारों तरफ उदासी छाई हुई थी। सब के मुँह पर हवाइयाँ उड़ रहीं थीं।

यह भीतर गया। देखा राजा महादुखी हैं और बे पानी की

ुली के समान तड़प रहे हैं। नमस्कार किया। कुशल पूछी। शरथ ने उत्तर दिया—"पहिले राम को बुला लाओ, पीछे 'माचार पूछो।"

वह दौड़ा हुआ गया। मन में तो समझ गया कि रानी ने ोई न कोई उत्पात मचाया है लेकिन पूछे तो किससे पूछे और से बताए भी तो कौन बताए!

यह राम से मिला। राम ने आदर सत्कार किया। सुमन्त कहा—"जल्द चलिए। महाराज ने बुलाया है।" यह आए, मस्कार किया। बोले तो बोले कौन! दशरथ तो लम्बी सांस ले कर ठण्डी आहें भर रहे थे। तब राम कैकई के पांव पर रे, "मातेश्वरी! पिताजी को क्या दुख है?"

कैकेई ने उत्तर दिया—"सुनो राम! तुम सर्व प्रिय हो। हाराज तुमको सब से अधिक प्यार करते हैं। किसी समय हाराज ने मुझे दो वर दिए थे। कल मैंने उन वरों के पूरा रने के लिए कहा। इन्होंने तुम्हारी सौगन्द खाकर मुझे वर ांगने की आज्ञा दी। मुझे जो भाया मांग लिया और वह यह —'भरत को चौदह वर्ष का राज्य और राम को चौदह वर्ष ा बनवास। बात केवल इतनी ही है। महाराज को तुम्हारे वियोग का महादुख है। यह कारण है कि इनका मन मलीन ो गया है। उनकी लाज तुम्हारे हाथ है। चाहे उनके वचन ो सच करो चाहे झूठ करो। मैंने यह भी कहा कि आप वर दीजिए। अपने वचन को पलट दीजिए और संसार में अपनी पकीर्ति कराइए। यह उन्हें स्वीकार नहीं है। दुविधा में पड़े ए हैं और दुविधा ग्रस्त प्राणियों की दशा में हैं।"

राम ने कैकेई को सन्तोष दिया—"माता! भरत में और झ में भेद नहीं है। जो वह हैं वही मैं भी हूं। उनके राज- ालक से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, किसी को भी बुरा न मानना

चाहिए। मैं जहां बन में रहूँगा भरत की कीर्त्ति को फैलाता रहूँगा।"

फिर राम ने दशरथ के पांव को छूकर नम्रबाणी से निवेदन किया—"चौदह वर्ष की अवधि बहुत नहीं होती। मैं सुखपूर्वक उसे व्यतीत करके फिर आपके चरण कमल का दर्शन करूंगा। यह कोई ऐसी बात नहीं है जिसके लिये आप इतने दुखी हो रहे हैं। आप प्रसन्न होकर मुझे बन जाने की आज्ञा दीजिये।"

दशरथ का मुंह बन्द था। न 'हां' कहा न 'नहीं' कहा। साँप छछूंदर की दशा थी। राम ने फिर उन्हें समझाया—'मैं आपका आज्ञाकारी बालक हूँ। माँ बाप की आज्ञा का पालन करना सन्तान का परम धर्म है। आप के प्रसन्न रहने से मुझे जीते जी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति रहेगी। मैं चलकर माता से मिल आऊँ फिर दर्शन करके बन को चला जाऊँगा।" राम को न हर्ष था, न बिशाद था और वह कोप भवन से कौशल्या के महल में गये।

आठवां समुल्लास

नगर में कुहराम मच गया

जंगल की आग के समान राम की वन यात्रा का समाचार सब जगह फैल गया। छोटे बड़ों ने सुना, बुरा लगा। हरी भरी खेती आंखों को भली लगती है। उसे कोई झुलस दे तो किसे अच्छा लगेगा! या तो नगर में बधाई बज रही थी या अब जिसने सुना अपने कलेजे को थाम लिया। बना बनाया हुआ काम बिगड़ गया। लहलहाते हुये खेत में पाला गिरा और वह देखते देखते जल गया।

लोग कहते थे कैकेई को हो क्या गया! वह इतनी बुरी

तो कभी थी नहीं। हाँ! सौतिया डाह तो उसमें कूट कूट कर भरा था लेकिन राम से तो वह क्रुद्ध नहीं रहती थी।

एक ने कहा—"अन्त बुरे का बुरा! जिस घर में कई स्त्रियां रहती हैं वहाँ तो ऐसा ही होता है और होना भी चाहिये। दशरथ लगभग बूढ़ा होगया था। उसे नई नई स्त्रियों से प्रेम का नाता जोड़ना अच्छा लगता था। एक स्त्री कौशल्या ही बहुत थी। तीन तीन रानियां पटरानियां! और फिर अनेक विषय भोगों की सामग्री की बहुतायत! अब जाकर उसकी कसर निकली।"

दूसरे ने कहा—"इस में किसी का भी दोष नहीं है। जो कुछ किया, विधाता ने किया। देवता मनुष्य को अपने खेल का लट्टू बना बना कर नचाते रहते हैं। कोई करे भी तो क्या करे! वह बिना खटपट मचाये हुए किसी को निश्चिन्त नहीं बैठने देते। बराबर लड़ाते रहते हैं।"

तीसरे ने कहा—"संसार बदल गया। सब की बुद्धि पलट गई और तू अब भी वही पुरानी लकीर का फ़कीर बना हुआ है। कहाँ की देवी कहां के देवता! यह सब भ्रम ही भ्रम है। देवता होते तो हम को तुम को सब को दिखाई तो देते।"

चौथा बोला—"कहीं न कहीं तो दाल में काला था। यह कर्म की गति है। कर्म का फल अवश्य मिलता है 'अवश्य मेव भोगतव्यम् कृत कर्म शुभाशुभम्!' मनुष्य समझता है हम ही सब कुछ हैं और अहंकार में चूर रहता है।"

पाँचवां—'कैकेई को अपयश मिलना था, उसके माथे कलंक का टीका लगने वाला था, सो लग गया। कोई क्या करे! और वह भी क्या करे!"

छटा—"यह संसार कुत्ते की पूँछ है। यह कभी सीधी नहीं होती। टेढ़ी की टेढ़ी बनी रहती है। आज तक किसी ने

इसे सीधी नहीं किया। ब्रह्मा बनाता और विष्णु सम्हालते रहते हैं। शिवजी आकर दम के दम में तहस नहस और नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं।"

सातवां—"नगर की बड़ी उन्नति हो रही थी। कितनी ही चटशालायें, औषधि शालायें, कला शालायें बनती चली जा रही थीं। अयोध्या वृद्धि के शिखर पर चढ़ रही थी! कैकेई के इस ऊधम का परिणाम सब को मिट्टी में मिलाये बिना न छोड़ेगा।"

आठवां—"यह सब तो सच है। जगत् देवासुर संग्राम है। यहां तो ऐसा ही होता रहेगा, होता चला आरहा है लेकिन राम कैसे अच्छे स्वभाव वाले थे। ऐसा मनुष्य तो संसार में कहीं देखने में नहीं आता। उन पर ऐसी आपत्ति आए! बात समझ में नहीं आती।"

नवां—'राम मनुष्य नहीं हैं! सब के शत्रु होते हैं, इनका कोई शत्रु नहीं है। एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक सब उनके शील स्वभाव की प्रशंसा करते हैं। यह देवता हैं।"

दसवां—"कैकेई शत्रु बनी कि नहीं?"

ग्यारहवां—"नहीं! कौन जाने इस कर्म की लीला में क्या रहस्य है! वह तो भरत से अधिक राम को चाहती थी। भरत जब देखो नाना के घर परदेश में रहते थे और कैकेई की गोद की शोभा राम से रहती थी। कोई बात समझ में नहीं आती।"

लाखों मुँह, लाखों बातें! कोई कहां तक इनका वर्णन करे!

नवां समुल्लास

राम-कौशल्या

राम कोप भवन से कौशल्या के महल में आए। माता के चरणों में शीस झुकाया। उसने आशीर्वाद दिया।

कौशल्या—"बेटे! कुछ जल-पान करले। देर होगई है। आज भीड़ भाड़ रहेगी। तुझे मेरे पास आने का समय न मिलेगा। राजतिलक दो घन्टे के पीछे होगा।"

राम—"राजतिलक न होगा। पिताजी ने मुझे बनवास की आज्ञा दी है। मैं बन यात्रा करने जा रहा हूँ। तुम से मिलने और तुम्हारा दर्शन करने आया हूँ।"

कौशल्या के सिर पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा। "अभी तो विवाह होकर आया है। बाप की आज्ञा न मान। मैं माता हूँ। बेटे और बहू के सुख का भोग तो मुझे कुछ मिले। मां को पिता की अपेक्षा दस गुना अधिकार है। उनकी बात जाने दे, मेरी बात मान।"

राम—"माता जी ने भी आज्ञा दे दी।"

कौशल्या समझ गई। "अच्छा! जब माता पिता दोनों ने कह दिया तो मैं क्यों अपना मुँह खोलूँ! माता पिता की आज्ञा और उनका आशीर्वाद तेरी सहायता करेगा।"

राम—"केवल चौदह वर्ष के लिए बन को जाता हूँ। भरत युवराज होंगे। मैं चौदह वर्ष बन में रहकर फिर तुम्हारे पवित्र चरणों का दर्शन करुँगा।

कौशल्या—"भरत मेरे जीवन का आधार रहेगा। जैसा तू वैसा ही वह। दोनों ही मेरी दृष्टि में समान हैं।"

राम—"तुम्हें और जो कुछ कहना सुनना हो कह सुन दो।"

कौशल्या क्या कहूँ और क्या सुनूँ ! तूने कह दिया मैंने सुन लिया। माँ की ममता को धक्का तो पहुंचा। वह पत्थर नहीं है। मोम के समान कोमल है। रोती हूँ आंसू बहाती हूँ तो तुझे ठेस लगेगी। तू स्मरण करता रहेगा कि माता दुखी है। मैं आँसुओं को पी गई। तू संसार में किसी और काम के लिए उत्पन्न हुआ है। तेरा कर्त्तव्य (करतब) दूसरा है। तुझे सुख दुख की परीक्षा में आना पड़ेगा। मैं जानती हूँ वहाँ कष्ट क्लेश भुगतने पड़ेंगे। वीर बनकर जा, और वीर बनकर रह और वीर की दशा में बन से अयोध्या को लौटआ। जीती रही तो फिर लौटने पर तुझे देखूँगी ..... जा ! वन देव तेरा पिता और वन देवी तेरी माता हो !"

राम को बन जाने का दुख नहीं था। वह स्वाभाविक उदासीनवृति वाले थे। अपनी माँ को भोली भाली और सरल स्वभाव वाली समझते थे। उसका आशीर्वाद सुनकर हँस पड़े। "माता ! क्या बनदेव और बनदेवी भी बन में हुआ करते हैं ?"

कौशल्या ने भी उस समय राम को भोला भाला बच्चा समझा। सिर और माथा चूमा और छाती से लगा लिया। "हाँ बेटे ! बन देवी और बन देव होते हैं। सृष्टि में जहां कहीं कोई केन्द्र बन जाता है इधर उधर से शक्तियां आकर्षित होकर उसे एक व्यक्ति बना लेती हैं और उसमें पुरुषत्व और स्त्रीत्व भाव प्रगट हो जाते हैं और इन्हीं को देवी देव कहते हैं। यह रचना इन्हीं केन्द्रों की समुदाय है। सृष्टि का समुद्र सदैव लहराता रहता है। उसके लहराने से जगह जगह केन्द्र बन जाते हैं और वही जीव होजाते हैं। सूरज जीव है जिसके कुल से तू उत्पन्न हुआ। चांद जीव है, तारे जीव हैं। एक केन्द्र में एक तू; एक तेरा पिता, एक भरत इत्यादि। जीव संज्ञा सब में होती है तो फिर बन के समूह में क्यों न होगी ? बन की पुरुषत्व शक्ति

का समूह बनदेव, प्रकृत शक्ति का समूह बनदेवी कहलाते हैं और प्राणी अपने भाव से उनकी सहायता के भागी होते हैं।"

राम—"क्या वृक्ष में भी जीव होते हैं?"

कौशल्या—"एक वृक्ष के पत्ते पत्ते, टहनी टहनी, शाखा २, चोटी चोटी, डाली डाली, जड़ जड़ सब जगह अनेक जीव केन्द्राकार होकर बसे रहते हैं। तूने पीपल के गाछ की स्तुति में सुना होगा-

मूले ब्रह्मा त्वचाविष्णुः शिखामध्ये महेश्वरः
पत्रे पत्रे देवानां वृक्षराज! नमोऽस्तुते।

एक मिट्टी का ढेला, एक पानी की बूँद तक जीव जन्तु के बिना सृष्टि में रह नहीं सकता। सब जीव ही जीव तो हैं।

जीव बिना जीवे नहीं, जीवे जीव अहार।
जीव रूप सृष्टि समझ, व्याप रही संसार॥

पुत्र तू सुपुत्र है। तूने मेरी कोख को पवित्र कर दिया। मैं बोलना नहीं चाहती थी। तूने अपनी बुद्धि से बुलवा लिया, सुनवा लिया, कहला लिया। देर हो रही है। जा बनदेव और बनदेवी तेरे सहायक हों!"

राम माता के चरणों में झुके। उससे नहीं रहा गया, रो पड़ी और उनके सिर पर हाथ रख कर आंसुओं के मोती न्यौछावर किए और राम उससे बिदा हुए।

दसवाँ समुल्लास

राम-सुमित्रा

राम अपनी दूसरी माता सुमित्रा के भवन में गए। वह काम काज में लगी थी। पावों पड़े। उसने छाती से लगाकर माथा चूमा, आशिष दिया।

राम ने कहा—"मातेश्री! बन जाने की आज्ञा मिले।"

सुमित्रा—"मैं सब समाचार सुन चुकी हूँ। जाओ बन में सुखी रहो। तुम्हारे लिए बन उपबन, मधुबन, बस्ती और पहाड़ एक हैं। फूलो-फलो, बढ़ो-सोचो तुम्हारे सहारे संसार का उपकार हो।"

राम—"तुम्हारा आशीर्वाद मेरा सहायक होगा परन्तु बन में मेरा बढ़ना और सोचना कैसे सम्भव है?"

सुमित्रा—'राम! तुम ब्रह्म के अवतार हो। ब्रह्म सागर तीनों काल में लहराता, बढ़ता और सोचता रहता है। तुम अपने इस बढ़ने और सोचने के गुण से रहित कैसे हो सकते हो? पराक्रम, प्रयत्न और परिश्रम से यश और कीर्त्ति में बढ़ो। बिवेक, विचार और ज्ञान से नाता जोड़ते हुए मनन (सोचने) की शक्ति से काम लो।

राम ने नमस्कार करके पीठ फेरी।

ग्यारहवां समुल्लास

राम-सीता

सीता ने सुना राम बन को जा रहे हैं। घबराई, व्याकुल हुई, दौड़ी हुई आई। चुपचाप! मुँह बांधे हुए सामने आकर खड़ी होगई।

राम ने कहा—"प्राणप्यारी! मैं बन को जा रहा हूँ।"

सीता—"मुझे भी साथ ले चलिये नाथ! यहां अकेले रह कर क्या करूँगी और कैसे रहूँगी?"

राम—"यहाँ रह कर सास की सेवा करो। जब माता उदास हों और मेरे वियोग के दुख से बेकल दिखाई दें, कथा वार्त्ता सुना कर उन्हें सन्तोष कर दिया करना।"

सीता—"मैंने यह आप ही से सुना था कि स्त्री का धर्म पति

की सेवा और साथ है और आज आप कुछ और ही उपदेश दे रहे हो। गौण और मुख्य पक्ष को दृष्टि में रख कर कुछ कहते तो और बात थी। माँ बाप छूटे, कुटुम्ब और कुनबा छोड़ा, किसके लिए ? आपके लिए या सास के लिए ? मैं यहाँ अकेली नहीं रह सकती।"

राम – "तुम सुकुमारी हो। बन और पर्वतों में बड़े बड़े कष्ट और क्लेश भोगने पड़ेंगे। सिंह, रीछ और चीतों का डर ! और फिर मनुष्यों का माँस खाने वाले निशाचर ! कभी अन्न मिला तो पानी नहीं और पानी मिला तो अन्न नहीं ! पहाड़ों पहाड़ों फिरना होगा। बड़ी बड़ी भयानक शिलाओं पर चढ़ना होगा। कैसे कहूँ कि तुम्हारा कोमल शरीर इन दुखों को सह सकेगा !"

सीता–"जहाँ आप होंगे, वहां ही मेरा स्थान है। जहाँ गाछ खड़ा होता है वहाँ ही उसकी छाया रहती है। इसके विपरीत बात दैव सुना रहा है और सुन कर मेरी छाती फटी जाती है। आप पर्वतों की शिलाओं पर मारे मारे फिरें और मैं महल में रहकर सुख भोगूँ ! यह कैसे सम्भव है ! प्राणनाथ ! आप भूलते हैं। सीता आपकी अर्द्धाङ्गिनी है। आधा अङ्ग आग में पड़े, आधा जल में रहे, ऐसा न आंखों देखा न कानों सुना।

सिंह, रीछ, निश्चर पहाड़ों पर बसते हैं। मैं जानती हूं। तुम्हारे भय से कौन मेरे निकट आ सकेगा ! आहार मिले या न मिले, पानी हाथ आए या न आए, मैं आपके दर्शन मात्र से जीऊँगी। नाथ ! सुख रहता कहां है ? वह तो आपके चरणों में है। मेरा सुख आप हैं। आप सामने हैं तो मैं सुखी, आप दृष्टि से ओझल तो मैं दुखी। कैसे समझूँ कि आप से अलग रह कर सुखी रह सकूँगी। सुख तो स्वयं आप हैं। आप कैसे मुझे छोड़कर सुखी कर सकोगे ? यह असम्भव है।

मैं कोमल हूं, आप बलिष्ठ हैं। कोमल बलवान की शरण

पाकर बलवान हो जाता है, निर्बल बेल गाछ से लिपटी हुई कैसी शक्तिवाली होती है कि छुड़ाए नहीं छुट सकती। सीता बलवान पति के संग रह कर कोमल और निर्बल कैसे होगी! और कौन उसे अबला कह सकेगा!

नाथ! मेरा और आपका जोड़ा है। स्त्री और पुरुष बैल के जोड़े के समान हैं। गृहस्थी का जूआ दोनों के कन्धे पर रहता है। दोनों मिलकर हल जोतते हैं, गाड़ी खींचते हैं। सोचिए तो सही! मेरी जगह बन पर्वत में आप के चरण कमल के साथ रहेगी या अयोध्या में!

अयोध्या मेरे लिए सूनी और अन्धकारमय होगी। जङ्गल, पहाड़ में जब मैं आपको देखूँगी, मेरी आँखों के सामने सूरज चमकता हुआ प्रकाश करता रहेगा। मुझे न छोड़ो, साथ ले चलो।"

राम--'प्यारी! समय विपरीति है। काल को काटना है, काल से कटवाना नहीं है। मैं तुझे कहां कहां लिए फिरूँगा!"

सीता—'मेरे लिए काल नहीं है। काल और किसी के लिए होगा। मैं तो अपने दयालु पति के सङ्ग का सुख लहूंगी। आपने पाणिग्रहण के समय क्या प्रतिज्ञा की थी! कुछ स्मरण भी है? सङ्ग रखना था या असंग?

आप मुझे अपने साथ कैसे रक्खोगे? जैसे छाया गाछ के साथ रहती है। बिना पानी के नदी को नदी नहीं कहा जाता। जैसे पानी नदी के सहारे आप दौड़ता रहता है, वैसे ही यह देह भी प्राण के सहारे ही जीवित रहती है। किस जीव ने आज तक कहा है कि देह बोझल है? समय ने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा। किसी और का बिगाड़ चाहे उसने किया हो। मेरा समय उस समय तक अनुकूल है जब तक आप मेरे साथ हैं।

मुँह खोलना सभ्यता के विरुद्ध है। मैं तो आपके पीछे पीछे

चलने वाली हूँ। स्त्री ही घर की झाड़ू-बुहारी करती है। आप मुझे आगे चलने का साहस देंगे तो मैं रास्ते के कांटे कटीले दूर करती हुई उसे साफ सुथरा बनाती चलूँगी। मेरा धर्म आप की सेवा है।

मेरा सेवा धर्म मुझ से न छीनिए, नहीं तो मैं पतित हो जाऊँगी। और संसार में मुँह दिखाने के योग्य न रहूंगी।

सेवक सेवा में रहे, सेव करे दिन रात।
जो कोई बिना कुसेव का, सन्मुख ना ठहरात॥"

राम—"यह सब सच है। तुम असत्य नहीं कहती हो। फिर भी सोच देखो।"

सीता-"सोच लिया, समझ लिया, मान लिया, जान लिया। जानने में कोई कसर नहीं रक्खी। सेवक हूँ तो आपकी सेवा में तत्पर रहूंगी। ऐ सूर्यवंश के कमल! जब धूप की गरमी आप को सतावेगी, गाछ के पत्तों का पंखा झलूँगी। अपने आंचल से तन का पसीना पौछूँगी! आप थक जायेंगे तो धीरे-धीरे पांव दबाऊँगी। घास फूँस का बिस्तर बनाकर आपको सुला दूँगी।

झरनों से पत्तों के दौनों में पानी भर लाऊंगी, पृथ्वी से कन्द-मूल खोद लाऊँगी, चकमक से आग निकाल कर लकड़ी जला कर उसे पका कर पत्तों की थाली में अपने नाथ के सामने रक्खूँगी, खिलाऊँगी, पिलाऊँगी। जब आप सो जायंगे मैं भी आपके पाँते पड़ रहूँगी। नींद को न आने दूँगी। आप की रखवाली करती रहूँगी।

मुझे कोई रोग सोग न सतावेंगे। यह तो मिथ्या मन की कल्पनायें हैं। आप को देखा, चित्त प्रसन्न हो गया, राह की थकावट चलीं गई। आप को उदास देखा मन बहलाने वाली दो चार बातें सुनादीं। मेरी हँसी और मुस्कराहट में आप

अपना दुःख भूल जाओगे और बन अयोध्या से भी अधिक सुहाना प्रतीत होने लगेगा।

बन के जल-वायु, फल-फूल और मूल में अधिक स्वाद मिलेगा! नगरों के आहार में नोंन मसाला डालना पड़ता है। उनका स्वाद विचित्र होगा, जो यहां नहीं होगा।

नाथ! मैंने सब कुछ सोच विचार लिया।

सीता अपने राम की, सुनो सनेही पीउ।
जलबिन मछली क्यों जिये, पानी का जो जीउ॥

राम—"प्यारी! तू इस समय कवियों जैसी बातें कर रही है। कविता और है। जीवन व्यौहार में आकर यह विचार खो जाते हैं।"

सीता—"मैं आप की दासी और आप के प्रेम जल की प्यासी हूं। आप मेरे पति अविनाशी हो। आप साथ हैं तो मैं सुख राशि हूं, नहीं तो उदासी और निराशी हूँ। कवियों की बाणी प्रेम मय होती है। सम्भव है कि आपके प्रेम में निमग्न होकर मैं कविता करने में लग गई हूँ। इसका मुझे ज्ञान नहीं है। ज्ञान है तो आपका, अनुमान है तो आपका और प्रमाण है तो आपका। मन बचन और कर्म से आप मुझे अपनी दासी समझते हो तो बन में अपने साथ ले चलो।"

राम—"तू मेरी प्राण प्यारी है। मैं तुझे अपने प्राण से भी अधिक प्यार करता हूँ इसलिये बन लेजाने में असमंजस कर रहा हूँ और कोई बात नहीं है।"

सीता—"नाथ! असमंजस न कीजिये। मुझे दुःख हो रहा है। साथ नहीं गई तो उधर आप गये और इधर सीता का प्राण गमन हुआ।"

राम—"बहुत अच्छा! चलो।"

बारहवाँ समुल्लास

राम-लक्ष्मण

लक्ष्मण कहीं बाहर गये हुये थे। सुना कि राम बन को जा रहे हैं, दौड़ पड़े। हांपते-कांपते हुये आये। होंठ फड़कते हुये! मन धड़कता हुआ! सामने आकर खड़े हो गये।

राम ने कहा—"लक्ष्मण! पिता और माता ने मुझे चौदह वर्ष के लिए बनवास दिया। आज्ञा पालन करना बेटे का धर्म है। मैं तो जारहा हूं, तुम अयोध्या में रहो।"

लक्ष्मण--"मेरी अयोध्या तो आपके चरणों में है। मैं और कोई अयोध्या नहीं जानता और न जानना चाहता हूं।"

राम--"भाई! समय प्रतिकूल है। मैं तो जा रहा हूँ। तुम यहाँ नहीं रहे तो माता, पिता और गुरू की सेवा कौन करेगा? इस समय तुम मेरे प्रतिनिधि हो। सोच समझ कर काम करने का अवसर है।"

लक्ष्मण--"ऐसे उपदेश के अधिकारी बहुत मिलेंगे। मुझे न इसका अधिकार है, न संस्कार है। मेरे न गुरू है, न मां है, न बाप है। मैं किसी की सेवा क्या करूंगा! हां! आप चाहे, मां-बाप भाई बन्धु, सखा-मित्र, गुरू-इष्ट, जो कुछ हों, आप ही हैं। आपके अतिरिक्त मैं किसी को नहीं जानता, न जानता हूं, न जानूंगा, न जानने की इच्छा है।"

राम—"अच्छा तो जाओ! अपनी माता से मिल आओ। तुमको न मैं समझा सकता हूँ, न तुम समझ सकते हो और साथ चलने में जल्दी करो।"

लक्ष्मण चले गये।

तेरहवाँ समुल्लास

लक्ष्मण—सुमित्रा

लक्ष्मण मां के पास आये। पांव पड़े। उसने आशीर्वाद दिया।

सुमित्रा--"तुम अकेले कैसे हो? तुमको राम के साथ रहना चाहिये था।"

लक्ष्मण--"मां मैं साथ था। राम बन को जा रहे हैं। तुम आज्ञा दो तो मैं भी साथ चला जाऊं।"

सुमित्रा--"हंसी। लक्ष्मण! तू कब कभी मेरी आज्ञा मांगने आता था! आज यह नई रीति किसने सिखाई? क्या मैं तेरी माता हूं? तू मेरी कोख से उत्पन्न हुआ, यह तो सच है परन्तु राम तेरे पिता और सीता तेरी माता है। व्यौहार की दृष्टि से तू मुझे माता कह ले। सच्चे माता-पिता वही हैं जिनके साथ तू रहता है। तू संसार में महा भाग्यवान है कि तेरे हृदय में राम की भक्ति है और तेरे पीछे मैं भी भाग्यवान हूं कि जिसका पुत्र राम का भक्त है।

इस समय तेरे भाग्य का तारा गगन के मध्य में चमक रहा है। राम केवल तेरी भलाई के निमित्त बन को जा रहे हैं। हाँ! उनकी सेवा में हजारों मनुष्य रहते हैं। वहां राम रहेंगे और तू रहेगा और कोई दूसरा सेवा का भागी न होगा। तुमको क्या दुख है? कोई भी नहीं। राम और सीता मां बाप के रूप में साथ हैं। हाँ! यह देखना राम को किसी बात का क्लेश न होने पावे।"

लक्ष्मण ने पाँव छुआ। सुमित्रा ने माथा चूमा और वह राम के पास चले आये।

चौदहवाँ समुल्लास

राम—दशरथ

सीता, राम और लक्ष्मण तीनों कैकेई के महल में आये। थ की दशा मुर्दे के समान हो गई थी। न बोलना, न ना, न हिलना, न डोलना। चुपचाप पड़ा रहना।

तीनों ने प्रणाम किया। यह उन्हें गहरी दृष्टि से देखा । राम ने हाथ बांधकर कहा—"पिता जी! बन जाने की ा प्रदान कीजिये। आपको यश और कीर्त्ति प्राप्त हो। कोई न कहे कि आप प्रण को पाल न सके। चिन्ता व्यर्थ है। ह वर्ष देखते देखते व्यतीत हो जायेंगे और मैं लौट कर के चरण कमल का दर्शन करूंगा।"

दशरथ राम की बात सुन कर उठे। उन्हें गोद में बिठा ा। "राम! मुनियों का विचार और विश्वास है कि तुम ब्रह्म, -मूर्त्ति और ब्रह्म के अवतार हो। तुम राज-पाट, मान- ष्ठा के भूखे नहीं हो, यह मैं जानता हूँ। यहां केवल एक ह है। पाप कोई करे और बदला किसी और को मिले। मेरी समझ में नहीं आता।"

राम ने उत्तर देना उचित नहीं समझा।

दशरथ ने युक्तियों से उन्हें रोकना चाहा। यह रुकने वाले थे! तब उसने सीता के सिर पर हाथ रख कहा—"पुत्री! में महा दुःख होता है। तुम कभी यहां रहो, कभी बाप के जाकर रहो। मेरा कहना मान जाओ।"

सीता ने मुँह नहीं खोला। अपने पाँव की तरफ़ दृष्टि ली।

लक्ष्मण ने प्रणाम किया। दशरथ उन्हें देखते रह गये।

नगर की स्त्रियां आई हुई थीं। सीता को समझाकर कहने लगी— 'तुम को तो बनवास नहीं दिया गया। तुम अयोध्या में रहो। बन में तुम्हारा क्या काम है?" सीता चुप! इनकी बातें उसे बुरी लगती थीं लेकिन वह मुँह खोलना असभ्यता समझ रही थी।

इनका समझाना बुझाना कैकेई को जहर के समान कड़ुवा लगता था। वह क्रुद्ध होकर उठी। वल्कल (गाछ की छाल के वस्त्र सामने रख दिए। राम ने अपने कपड़े उतार दिए और इन्हें पहिन लिया। लक्ष्मण ने भी ऐसा ही किया। दशरथ की आंखों से आँसू की धारा बह निकली।

राम कैकेई के चरणों में पड़े। "मातेश्री! पिता की सेवा करना मेरा धर्म था। अब इसका भी भार तुम्हारे सिर पर पड़ा। मेरा अपराध क्षमा करना।"

कैकेई—"तुम तो बन जाओ। अपने अपने सिर का बोझ सब सँभाल लेंगे।"

सीता और लक्ष्मण ने भी कैकेई को नमस्कार किया और बिदा होकर महल से बाहर आए।

ठट के ठट लोग वहां खड़े थे। गुरु वशिष्ठ भी इनके साथ थे। राम ने दान दक्षिणा देकर सब को प्रसन्न किया और समयानुसार बात-चीत करके सन्तोष दिया।

सुमन्त दशरथ के पास आया। राजा ने कहा—'सुमन्त! राम को ले जाओ। दो चार दस दिन इधर उधर घुमा फिरा कर ले आओ। वह आए तब तो मैं कुछ दिनों और जीऊँगा, नहीं तो मेरी मृत्यु को आई हुई समझो। यह बात राम से कह देना।" बाहर आकर उसने रथ को तैयार किया। तीनों चढ़ बैठे और सुमन्त हांकने लगा।

राम ने कहा—'सुमन्त! रथ को ऐसा हाँको कि पृथ्वी पर

हियों की लकीर न पड़ने पावे। अयोध्यावासी मेरे वियोग से हुत दुखी हैं। ये पहियों की लकीर के सहारे मेरे पास आने के इच्छुक होंगे। इनको पता न लगने पावे कि मैं किधर को या हूं।"

सुमन्त ने ऐसा ही किया। लेकिन बहुत से अयोध्यावासी फेर भी उनके साथ चलने को तैयार होगये। राम ने उन्हें समझा बुझाकर बड़ी कठिनाई से अयोध्या लौटाया।

पन्द्रहवां समुल्लास

राम-शृङ्गपुर

रथ चला। घोड़े हिनहिनाने लगे। इनको स्वाभाविक अनुभव था कि राम को बन पहुँचाने जारहे हैं। दुखी थे, बोल नहीं सकते थे। बागडोर सुमन्त के हाथ में थी। वह रथ चलाने के काम में प्रवीण थे। उनके भी मन को क्लेश था। अच्छे लोग बुरे कामों से कतराते रहते हैं। लेकिन कर्मचारी थे, क्या करते! उनका क्या वश था! वह जितना हो सका रथों को हाँकते हुए अवध की सीमा पर आगये। रथ से सब उतर पड़े। शृङ्गपुर गङ्गा के तट पर बसा था।

सुमन्त ने कहा—"भगवन्! आपके पिताजी ने आज्ञा दी थी कि बन को दिखाकर आपको लौटा ले चलूँ।"

राम ने उत्तर दिया-"पिताजी मोह के वश में हैं। सुमन्त! जगत का व्यवहार दैव आधीन है। प्राणी समझता है मैं ही सब कुछ कर रहा हूँ। यह उसकी भूल है। संसार में दैवी शक्तियां प्रबल हैं। निर्बल मनुष्य उनका सामना नहीं कर सकता। चाहिए तो यह कि वह चुपचाप व्यौहार में लगा रहे। यह उससे नहीं होता। अहंकारी बन बैठता है और उसका परिणाम दुःख

होता है।

अब मैं जब आऊँगा, चौदह वर्ष के पश्चात् ही आऊँगा पिताजी के बचन को जीतेजी झूठा न होने दूँगा। उन्हें समझ देना। दिन यों ही बीत जायँगे और मैं फिर आकर उनव दर्शन करूँगा।"

सुमन्त का गला रुँध गया। आंसुओं की धारा बह चली राम ने कहा—"आप बुद्धिमान हैं। समझ बूझ रखते हैं। मू प्राणियों की दशा में आप नहीं हैं। जाइए ईश्वर से प्रार्थन करते रहिए कि मैं बन से आकर फिर आप से मिलूँ। पिताज की सेवा आपको सौंपता हूं। इससे अधिक न कहना चाहत हूँ, न सुनना चाहता हूँ। जाइये और अपना काम कीजिये।"

सुमन्त ने प्रणाम किया। राम ने उन्हें छाती से लगा क बिदा किया। वह रथ पर बैठे, लगाम पकड़ी। घोड़े चलने रुकने लगे। सुमन्त ने उनकी पीठ पर हाथ फेरा, वह समझ गये। बेवश थे। आँसू बहाते हुये अवध की तरफ धीरे धीरे च निकलने ही को थे कि सुमन्त ने बाग रोकी। यह सोचा रा जब बन को चले जांय तब ही मैं अयोध्या को जाऊँ।

सोलहवां समुल्लास

राम–निषाद

शृङ्गपुर में निषाद का राज था। वह वहां का राजा औ जाति का माँझी था जो मछलियां पकड़ते और हाट बाजार ले जाकर बेचते हैं। राम से इसे पहिले से परिचय नहीं था। कभ इन्हें देखा भी नहीं था। उनके गुण सुनकर मोहित होरहा था।

उसने सुना राम गङ्गा के तट पर आए हुए हैं। उनके सा केवल उनकी रानी सीता और भाई लक्ष्मण हैं। सुनते ही सि

के बल मिलने के लिये दौड़ा और अपने साथियों और सम्बन्धियों को बुला भेजा। वह बहुतायत के साथ खाने पीने की सामिग्री लेकर आये।

निषाद ने आकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अपना नाम बताया। राम ने उठ कर उसे छाती से लगाया। उसने फिर सीता को दण्ड प्रणाम करके लक्ष्मण के पाँवों को छूआ। उन्होंने भी उसे छाती से लगा लिया।

वहां आसन कहां था! राम भूमि पर बैठे, निषाद भी आज्ञा पाकर बैठ गया।

निषाद ने कहा—"अयोध्या का अभाग्य और शृङ्गपुर का सौभाग्य है। मैं किसी को क्यों बुरा भला कहूँ! आप मुझे दर्शन देने के लिये यहां पधारे हैं नहीं तो मेरा भाग्य कब ऐसा था कि आपके चरण कमल को देखता।"

राम प्रसन्न हुए—"भाई! तुम भक्त हो। इस प्रकार की वाणी को तुम्हारे मुँह से शोभा मिलती है। तुम से मिलकर इस समय मैं संसार को भूल गया।"

निषाद ने उनके चरण की धूल को मस्तक पर लगाया।

निषाद के कर्मचारियों ने गङ्गा के तट पर दो फूँस के झोंपड़े बनाये। एक में राम और सीता ने निवास किया और दूसरे में लक्ष्मण ठहरे।

खाना पीना क्या था! अब सीता, राम और लक्ष्मण वनवासी हो चुके थे। कन्द-मूल, फल-फूल पत्ते मंगा लिये गये थे। उसी का आहार किया गया। सूरज डूबने से पहिले निषाद राम से मिला। राम ने उसके साथ भ्रात्री भाव का बरताव किया क्योंकि वह उस देश का राजा था और वह स्वाभाविक राम का सच्चा प्रेमी भक्त बन गया। इनमें जो बातें हुईं वह सुनने और विचार करने के योग्य थीं।

निषाद—"नाथ ! यह क्या है ? आपका सुखी जीवन होना चाहिये था और आप बन बन तपस्वियों के समान फिरेंगे। मेरी समझ में कोई बात नहीं आती। प्रारब्ध कर्म की गति प्रबल है।"

राम—"भाई ! ब्रह्मा ने इस जगत को द्वन्द बनाया है। जहाँ सुख है वहाँ दुख भी है। प्रातःकाल और सायंकाल, दिन और रात, धूप-छांह, गरमी-जाड़ा, युवा और वृद्धा अवस्था, मित्र और शत्रु, विष-अमृत, बस्ती-उजाड़, सब साथ साथ रहते हैं। बिना दुख के सुख नहीं, बिना सुख के दुख नहीं। द्वन्द का प्रबन्ध ही ऐसा ही है।

कभी हम जागते हैं और, कभी सुख नींद सोते हैं।
कभी मैले कुचैले हैं, कभी हम मल को धोते हैं॥
यहां देव और असुर संग्राम में, लड़ते झगड़ते हैं।
कभी उठते हैं और उठ उठ के, सब भूमि में पड़ते हैं॥
कहीं पानी अधिक है और, कहीं पर आग जलती है।
कभी डूबी समुन्दर में, कभी मछली उछलती है॥

तुम मीठा ही मीठा तो नहीं खाते, कड़वी मिर्च भी खाते हो। फिर इन बातों का उलहना कैसा ! जैसी व्यापे आपदा, तैसा सहे शरीर।

द्वन्द जगत न होता तो विचार शक्ति की फुरना न होती। यह न समझो कि सुख में कल्याण है, बल्कि जिसे तुम दुख समझ रहे हो वह भी मनुष्य की वृद्धि और उन्नति का सहायक होता है।"

निषाद—"हम अज्ञानी मनुष्य हैं। हमको इन बातों की समझ नहीं है। जब कभी आप जैसे महानुभावों का दर्शन प्राप्त होता है, तो ज्ञान-ध्यान की बातें सुनने में आती हैं लेकिन यह

तो कहिए क्या आप जैसे पुरुष भी प्रारब्ध के वश हुआ करते हैं ?"

राम—"नियम तो नियम है और नियम अटल हुआ करता है। वह सबके लिये एक ही प्रकार का होता है। हां! इसमें इतना भेद है अज्ञानी तो मोहवश तड़पता रहता है और ज्ञानी समझ बूझकर शान्त हो जाता है।"

निषाद—"तो ज्ञानी और अज्ञानी दोनों को ही सुख दुख हुआ करता है ?"

राम—"हाँ !"

निषाद—"फिर भेद क्या हुआ ?"

राम—"भेद यह है कि ज्ञानी को विवेक शक्ति के सहारे सुख दुख की समाता रहती है। अज्ञानी में असमाता होती है। ज्ञानी निश्चल वृति में आरूढ़ होता है, अज्ञानी में चंचलता रहती है। उसे दुख विशेष होता है। मिर्च खाने वाले मिर्च की कड़ुवाहट को बुरा नहीं कहते। जो उसे नहीं खाते उन्हें दुख होता है और जिनको दोनों का अभ्यास हो गया है उनके लिए दोनों समान जंचते हैं। दुख अपने साथ बड़े बड़े गुण भी रखता है। इसकी निन्दा करना भी अच्छा नहीं है।"

सुख के मांथे सिल पड़े, जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुख की, जो पल पल नाम रटाय॥

सुख दुःख एक समान हो, हर्ष शोक नहिं व्याप।
निश्चल वृति ज्ञानी की, परखे अपने आप॥

निषाद—"राम ! आप ज्ञानी हो। मैं बहुत दिनों से आप की प्रशंसा सुन रहा था। देखा नहीं था। अब आपने मुझे दीन समझ कर दर्शन दिया और मैं कृत्य कृत्य होगया। इधर सब कहते हैं कि दशरथ के घर में राम ब्रह्म के अवतार प्रगट हुए हैं। क्या आप ब्रह्म के अवतार हैं ?"

राम भोले भाले मांझी के प्रश्न को सुनकर हँस पड़े। कहने लगे—"सुनो निषाद! जिसके मन में शान्ती है वह शान्त है। जो सबको अच्छा समझता है अच्छाई उसी में है। तुम मुझे बड़ाई दे रहे हो, वह बड़ाई कहाँ है? तुम्हारे मन में है, तुम बड़े हो। जो वस्तु जिसके पास है वही वह औरों को दिया करता है।"

बड़े बड़ाई पाय कर, सबहि बड़ाई देत।
उसके बदले जगत् में, यश कीरति सुख लेत॥

निषाद—"बस! भगवन् बस! अब मैं समझ गया। आप ब्रह्म के अवतार हैं। ब्रह्म में बड़ाई है। जो दीन मलीन और नीच निषाद को भी बड़ाई दे रहा हो वह अवश्य ब्रह्म का अवतार होगा। मुझे पूरा पूरा निश्चय हो गया।"

निषाद सीधा साधा मनुष्य था। यह कह कर राम के चरणों में गिरा। राम ने उसे उठा कर फिर छाती से लगा लिया।

बात चीत करते हुये रात अधिक व्यतीत हो गई। निषाद नमस्कार करके झोंपड़े से बाहर आया। राम और सीता कुशा-बिछाकर सो रहे।

सत्तरहवां समुल्लास

लक्ष्मण-निषाद

निषाद बाहर आया। देखा कि लक्ष्मण हाथ में धनुष बाण लिये हुए झोंपड़े के इधर उधर दूरी पर उसकी रखवाली कर रहे हैं। समझा कि लक्ष्मण राम के सच्चे भक्त हैं, पाँवों पर गिरा। लक्ष्मण ने उसे छाती से लगा कर घर जाकर सो रहने को कहा।

निषाद—"भगवन्! आप राम के भक्त हैं। मेरे भाग्य धन्य हैं कि मैंने भी इस उजड़े गांव में आपका दर्शन पाया। मैं आज आपके साथ राम की रखवाली की सेवा करना चाहता हूँ।"

लक्ष्मण—"सेवा करना तो मेरा ही धर्म है। मैं राम का सेवक बनकर रहना चाहता हूँ और इस सेवा में किसी को अपना साझी नहीं बनाना चाहता।"

निषाद—"मैं आपकी इस सेवा में साझी नहीं होना चाहता, न हो सकता हूँ। आज्ञा मिले तो मैं आपकी सेवकाई में यहाँ ठहर जाऊँ।"

लक्ष्मण—"क्यों?"

निषाद—

हरि सों तू मत हेत कर, हरिजन सों कर हेत।
माल मुल्क हरि देत है, हरिजन हरि को देत॥

लक्ष्मण जोर से हँसे। "तुम बड़े चतुर और स्याने हो। अच्छा, ठहरो! मैं तुमको न रोकूँगा।"

और निषाद वहाँ रुक गया।

दोनों कुटी से दूरी पर बैठ गए। राम और सीता विश्राम में थे। इनकी नींद में विघ्न न पड़े। दोनों में बातचीत होने लगी।

निषाद—"क्या यह शोकजनक दशा नहीं है कि राम महलों से अलग होकर आज घास-फूँस की शैया पर शयन कर रहे हैं? विधाता की लीला बड़ी विचित्र होती है।"

लक्ष्मण—"यह न कहो। राम जगतपति है। वह जो न करें वह थोड़ा है। उनके लिये बस्ती और उजाड़ दोनों एक ही हैं।

वही स्वर्ग में है वही नर्क में है।
वही ज्ञान में है वही तर्क में है॥
जिधर देखिये राम ही राम व्यापे।
समाये हुए सब में रहने हैं आपे॥

यह लीला है नर लीला करने पर आये।
हैं सब उनके इस जग में अपने पराये॥
नहीं मीत और शत्रू कोई उनका।
जो तुम देखते हो यह है उनकी लीला॥
करो दर्शन और भ्रम अज्ञान त्यागो।
पकड़ राम के पद कमल जग से भागो॥

निषाद—"आप की बातों से मुझे निश्चय हो गया है आप राम के सच्चे भक्त हैं और मैं बड़ा भाग्यवान हूं आपने मुझे दर्शन दिया है।"

लक्ष्मण हँसे—"भक्त तो तुम हो। मैं उनका सबसे अध सेवक हूँ।"

निषाद-"आप मुझे बड़ाई दे रहे हैं। कहां राम और क मैं! राम सूर्यकुल के हंस और मैं नीच और अधम माँझी!"

लक्ष्मण—"राम को कुल और जाति प्यारी नहीं है। र को भक्ति प्यारी है,"

जात-पांत पूछे नहिं कोई। राम को भजै राम का होई॥

निषाद—"मैं नीच और पापी हूँ। मेरी दृष्टि छोटी छो ही बातों पर जाती है। मेरी समझ में कैकेई ने बड़ा अन किया जिसने राम को बनवास दिया। सुकुमारी सीता आ घास-फूँस पर लेटी हुई है। देखकर देखने वालों की छा फटती है। कैसे कहूँ कि कैकेई का यह काम उचित [redacted] तो महापाप है।"

लक्ष्मण—"यहाँ तुम बड़ी भूल में हो। कोई किसी सुख के देने वाला नहीं है। यह जो कुछ हो रहा है, नियमानुकूल ही हो रहा है। कैकेई माता निर्दोष है। उसके इस काम के परदे में क्या रहस्य छिपा है! जो रहा है और होने वाला है उसका आधार कोई अं[redacted]

हुई शक्ति है जिसका हमको ज्ञान नहीं है। तुम राम को प्यार करते हो। प्यार की दृष्टि से कैकेई को बुरा भला कहते हो। ऐसा न होना चाहिए। तुम नहीं जानते कि राम कैकेई को कौशल्या से अधिक मानते हैं और वह उन पर जान देती है। तुम अयोध्या में होते तो देखते कि राम कौशल्या के पुत्र नहीं हैं, बल्कि कैकेई के पेट के जाये हुये हैं। ऐ मित्र! जब मनुष्य के हृदय में किसी देवता का प्रभाव पड़ता है तब उसकी बुद्धि और प्रकार की हो जाती है। किसी को दोष लगाना अच्छा नहीं है। जहाँ बुद्धि काम न दे वहां चुप रहना अच्छा है।"

निषाद—"ऐसी दशा में मनुष्य करे तो क्या करे!"

लक्ष्मण—"राम के नाम का सहारा ले और संसार के व्यौहार को राम की लीला प्रतीत करे। इसी में इसका कल्याण है।"

निषाद—"आप जो कहते हैं वह सच है लेकिन क्या ऐसी वृत्ति को मूढ़ वृत्ति न कहा जायगा? जिसमें समझ बूझ से काम न लिया जाय वह मूढ़ वृत्ति कहलाती है।"

लक्ष्मण—"इस वृत्ति को मूढ़ नहीं कहते। यह तो समाहृत वृत्ति है। मूढ़ वृत्ति तो अज्ञान संयुक्त अहंकार वृत्ति है। इस वृत्ति के आते ही ज्ञानी संसार की तरफ से सोते और परमार्थ की ओर से जागते हैं। मूढ़ वृत्ति बन्धन है। उस बन्धन में काम, क्रोध, लोभ, मोह जागते हैं और राम के नाम लेने से जो वृत्ति उत्पन्न होती है उसमें काम इत्यादि सो जाते हैं और मनुष्य का आन्तरिक अनुभव जागता है।

निषाद—"मैं समझ गया। अपना मुँह बन्द रक्खूँगा।"

इस प्रकार बात चीत करते हुये रात बीत गयी और सूर्य देवता निकल आये। राम सीता जाग उठे और न्हा धोकर गङ्गा के उस पार जाने की इच्छा प्रकट की।

अवध खण्ड का प्रथम भाग समाप्त।

दूसरा अवध खण्ड

द्वितीय भाग

पहिला समुल्लास

गङ्गा पार जाना

गुह निषाद से राम ने कहा—"डोंगी मंगाओ। मुझे
के उस पार जाकर बन यात्रा करना है।"

निषाद ने साथियों को पुकारा। वह डोंगी लाए।

राम डोंगी पर पैर रखना चाहते थे। निषाद ने कहा—"
इस डोंगी के सहारे मांझियों की जीविका है। यहां सब
कहते हैं कि जनकपुर जाते हुए राम ने अपने पाँवों से
पत्थर की शिला को छू दिया था। पांवों की धूल लगते ही
शिला अपसरा बनकर उड़ी और स्वर्ग को चली गई। हम
डर है कि कहीं हमारी काठ की नवका की वही दशा न
जाय। तब तो माझी बिना जीविका के मर जायेंगे। उन
रोटी का सहारा चला जायगा। आज्ञा दीजिए तो मैं आ
चरण कमल को धोलूँ। पांवों की धूल धुल जावे और हम
मन का खटका मिट जाय।"

राम मुस्कराए। सीता ने निषाद को गँवार समझ
लक्ष्मण ने उसे राम का भक्त जाना।

राम ने कहा—"तुम मेरे पांव धोलो। मन के अंदर
का रहना अच्छा नहीं है।"

निषाद ने काठ के बर्तन में उनके पाँव धोये। वह इस क
में अकेला ही नहीं था। सब के सब मांझियों ने चरण धो
उस चरणामृत को पी गए और अपने शीस पर और आंखों

लगाया। तब सीता को ज्ञान हुआ कि निषाद गंवार नहीं है। भक्ति भाव के आधीन होकर उसने इस गंवार युक्ति से काम लिया है।

नवका पर चढ़े। गुह निषाद आप उसे खे कर लाया। यह उतर पड़े। राम के पास कुछ नहीं था कि मांझी को देते। सीता भाँप गई। अपनी अँगूठी उतारी। लेकिन माँझी ने कहा—"मेरा आपका काम एक समान है। आप मेरे घाट पर आए। मैंने आपको गंगा पार कर दिया। जब मैं आपके घाट पर आऊँ तो मुझे भी कुल कुटुम्ब सहित भवसागर से पार कर दीजिएगा।"

सीता ने अँगूठी लेली—"मैंने तुझे सीधा साधा मनुष्य समझा था। तू सचमुच निषाद गुह है। निषाद कहते हैं अन्धकार देने वाले या अन्धकार में पड़े हुये को और गुह नाम है गूढ़ रहस्य का और गुप्त भेद का! तू अँधेरे के भेष में छिपा हुआ भेद है। तुझ में भक्ति है और इस भक्ति के प्रभाव से तू संसार में सदा सुखी रहेगा और लोग प्रभु का भक्त समझकर तेरी स्तुति करेंगे और यशकीर्त्ति फैलेगी। तू गुदड़ी में छिपा हुआ लाल है।"

निषाद ने अपना शीस झुका कर विनती की—"जिस पर आपकी कृपादृष्टि हो उसे चारों फल धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सहज में प्राप्त हो जाते हैं। मैं धन्य हूं। आज मुझसे अधिक भाग्यवान् इस संसार में कौन है!"

राम ने कहा—"तुमने पार उतार कर मेरा उपकार किया। अब जाओ और अपने परिवार के साथ सुखी रहो, बन से लौटने पर मिलूँगा।"

निषाद बोला—"मैं और आपके साथ उपकार करूँ! कैसी विचित्र बात है! मैं तो नीच, निकम्मा और अपकारी हूँ। सर्वश्रेष्ठ उत्तम और उपकारी केवल आप का रूप है और आप संसा-

रियों के उद्धार के लिए यह नर लीला कर रहे हैं। मुझे आज्ञा हो तो मैं साथ चलूँ और कुछ न होगा तो प्रति दिन आपके लिए रात से पहिले वन में झोंपड़ी बना दिया करूँगा।"

राम ने स्वीकार नहीं किया और समझा बुझाकर उसे सन्तुष्ट किया और तीनों प्राणी भरद्वाज ऋषि के आश्रम की ओर चले।

दूसरा समुल्लास

राम-भरद्वाज सम्वाद

भरद्वाज ऋषि बृहस्पति के पुत्र आत्मिक दृष्टि से गगन मण्डल के रहने वाले और स्वर्गीय ध्वनि के अलापने वाले पक्षी कहलाते थे। संस्कृत भरत (पकड़ने वाले) और बाज (बाज पक्षी) इनके बाप बृहस्पति (संस्कृत बृह—वृद्धि और बढ़ना, पति—अधिष्ठाता) थे जो देवताओं के गुरु थे। यह वैदिक ऋषि थे। गुरु से अनबन हो गई। उसने कहा मेरा ज्ञान उगल दे। इन्होंने वमन कर दिया। गुरू के शिष्य तीतरी बनकर उसे चुन कर खा गये। यह तीतरी शाखा के ब्राह्मण कहलाये। उगले हुए या वमन किये हुए मन्त्र संहिता का नाम कृष्ण यजुर्वेद हो गया। फिर यह ऋषि बाज पक्षी के रूप में उड़ा और सूर्य्य से ज्ञान प्राप्त किया और उन ज्ञान मन्त्रों की संहिता का नाम शुक्ल यजुर्वेद रक्खा गया। भरद्वाज बड़े प्रतापी ऋषि थे जो अनहद वाणी, उद्गीत राग के आचार्य कहलाते हैं और जिसका वर्णन तुमको बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलेगा। यह राजा जनक के बड़े प्रेमी थे।

राम इसी ऋषि के आश्रम में पहुंचे। दण्ड प्रणाम किया। ऋषि ने उन्हें छाती से लगाया। 'सूर्य्यकुल के कमल! आज

मेरे सौभाग्य का तारा चमक उठा। आप मेरे गुरु (सूर्य) के कुल से हो। मैं आपको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ।"

ऋषि ने कन्द-मूल, फल-फूल और पत्ते भेट किये। इन्होंने आनन्दपूर्वक आहार किया। गंगाजल पिलाया। तृप्त हुए। ऋषि जानते थे कि राम वहां आयेंगे। बन जाने वालों को बिना प्रयाग की यात्रा के बनवास का कोई फल नहीं प्राप्त होता।

राम आश्रम में ठहरे। उनके सत्संग का लाभ उठाया। सत्संग के बिना जप, तप, वैराग, साधन सब ही को निष्फल समझो। जिस पर बड़ी कृपा होती है उसी को यह मिलता है नहीं तो प्राणी भटकते रहते हैं—

जाके गुरु का संग कर, गुरु संग से अनुराग हो।
सफल जप, तप, धर्म नियम हो, सफल राग विराग हो॥
क्या कथा में है धरा, क्या वार्त्ता में है धरा।
सत की संगत ही है सत्संग, इस ही का लो आसरा॥

एक दिन राम का दर्शन पाकर भरद्वाज इतने मग्न हुये कि मन में फूले न समाये। राम सीता और लक्ष्मण बैठे हुए थे। ऋषि ने खुले मन से मुँह खोला। "ऐ राम! मैं तुमको क्या समझा सकता हूँ? तुम आप समझे बूझे हुये हो। सूरज को दीपक नहीं दिखाया जा सकता लेकिन तुम संसार में देखते हो लोग थाली में कपूर और घी जलाकर सूरज के सामने फेरी करते हैं। इस बात को भूल जाते हैं कि जगत का सारा प्रकाश सूरज से है। इसी तरह लोग नदी नाले और तालाबों में खड़े होकर अपनी अंजली से सूरज को पानी देते हैं और उन्हें यह स्मरण नहीं रहता कि सूरज की गरमी से पानी बरसता है। ठीक वैसे ही मैं भी इस समय आपके सन्मुख बैठा हुआ ज्ञान ध्यान की बातें कर रहा हूँ।"

"भक्ति और ज्ञान दोनों गुरु के आसरे होते हैं। जब तक

गुरु न मिले तब तक भक्ति और ज्ञान दोनों की उपलब्धि नहीं होती। गुरू सत है। जिसमें सत हो, जो सत स्वरूप हो और जो सत का जीवन हो उसी की संगत का नाम सत्संग है। गाना बजाना व्याख्यान सुनना, कथा कहानी का रस लेना सत्संग नहीं कहलाता। यह न हो तो साधुओं का संग भी सत्संग कहलाता है। इससे भी लाभ होता है।

साधु वह है जो साधना में लगा रहे। भेषधारी को साधु कहना भूल है। यह निरा स्वांग है। साधना सम्पन्न ही साधु कहलाता है और ऐ राम! जो साधना-सम्पन्न होते हैं वही अनुभव सम्पन्न भी हो सकते हैं। अनुभव से परिचय मिलता है, रूप की समझ आती है। यह रूप की पहिचान है—

पियु परिचय तब जानिये, पियु सौं हिलमिल होय।
पियु की लाली मुख पड़े, प्रगट दीसे सोय॥
लाली अपने लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

ऐ राम! इसी सत्संग का दूसरा और उचितर नाम प्रयाग (प्र=मुख्य, और याग=पूजा-यज्ञ परे के यज्ञ को प्रयाग कहते हैं। परे का यज्ञ घट में किया जाता है। यह यज्ञ साधुओं के मंडल में रात दिन हुआ करता है। इनके अंतर्गत वेदी है। उसमें श्रद्धा की आहुति दी जाती है और जहाँ यह अंतरी आग एक बार प्रगट हो गई फिर कभी बुझने में नहीं आती।

यह साधु संग तीर्थराज या तीर्थों का राजा है। इससे बढ़ कर और कोई तीर्थ नहीं होता। इसमें तीन नदियों का संगम है—गंगा, यमुना, सरस्वती।

गंगा ऐ राम! तुम्हारी भक्ति की धार है जो ऊपर शिखा से बहती हुई आ रही है और वह सुमेरु पर्वत (शिखा) से भी परे है। ऐ राम! इस तीर्थ की सरस्वती तुम्हारे स्वरूप के ज्ञान का

विचार है जो सत के समझने और समझाने में सहायक होता है और यमुना नदी ऐ राम ! तुम्हारी ही कथा के चरित्रों का वर्णन है जिसके द्वारा मनुष्य विधि पूर्वक कर्म करता है और निषेध कर्म से बचकर रहता है। सत जीवन, ज्ञान, कर्म ये तीन धारें हैं, जो उस तीर्थराज में आकर मिलती हैं। यह तो मैंने तुम्हें तीर्थराज का बाहरी रूप बताया। तुम्हारे अंतर शारीरिक मेरु दण्ड के सहारे तीन नदियां रहती हैं। वह इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कहलाती हैं। सुषुम्ना मध्य में हैं। दाहिने पिंगला और बांए इड़ा हैं। यही सच्ची गङ्गा, यमुना और सरस्वती हैं और इनका संगम स्थान भ्रू मध्य है जो रुद्र नेत्र, शिव नेत्र, रुद्राक्ष और तीसरा तिल या आजना चक्र कहलाता है। सुषुम्ना (बीच की नाड़ी) गङ्गा (संस्कृत गम = चलना और गा—जो चलता है) पिंगला दांए नाड़ी (संस्कृत पिंग=पीला रंग) और इड़ा या इला (संस्कृत इल=पृथ्वी या वाणी) है।

यहां तीनों नदियों का संगम तुम्हारे भीतर है जिसका पता साधुओं के सत्संग से मिलता है।

ऐ राम ! मेरे आश्रम का नाम ही प्रयाग होगया। इस आश्रम में अक्षय वट का गाछ है। सत्संग का अक्षय वट निज विश्वास और धर्म की दृढ़ वृत्ति है।"

तीसरा समुल्लास

राम भरद्वाज सम्वाद

राम ने कहा--"प्रयाग परे का यज्ञ सही। यह क्या होता है ? कैसे होता है ? और एक स्थान में होता है या जगह जगह होता है ?"

भरद्वाज ने उत्तर दिया--"प्रयाग वह यज्ञ है जो परे का है

और बाहरमुखी संसारी करते आए हैं। संगम में नहाए, पर्व के दिन उत्सव मनाया और चलते बने। कहीं यज्ञ हुआ तो देखा, कथा वार्त्ता सुनी और अपना रास्ता लिया। परे का योग या यज्ञ घट में किया जाता है और इसके दो रूप होते हैं। एक बहिरंग, दूसरा अन्तरिंग।

बहिरंग यज्ञ बाहरी सत्संग है। यह यज्ञ मेरे आश्रम में पूरे माघ के महीना तक हुआ करता है, जब सूर्य मकर राशि में आता है। यह यज्ञ मैंने सूर्य से सीखा है। जो सत्संगी मेरे पास आते हैं, मेरी बातें सुनते हैं। यह बातें आहुति होती हैं जो कानों के द्वारा दी जाती हैं। इनके हृदय में वेदी बन जाती है। वहां विश्वास और धर्म की आग प्रज्वलित की जाती है और वह बचन के घृत को पाकर प्रचंड हो जाती है। जितने मनुष्य सत्संग में आकर सुनते हैं सब के अन्तर में यह यज्ञ आप ही आप होने लगता है। सौ मनुष्य हैं तो उनके हृदयों में सौ वेदियाँ बन जाती हैं, पाँच सौ हैं तो यह पांच सौ बनती हैं। यह बहिरंग यज्ञ का साधन है।

जब बहिरंग साधन की पूर्त्ति हो लेती है अन्तरिंग साधन की बारी आती है और उसके अंतर्गत मैं पांच अग्नि विद्या सिखाकर केवल प्राण द्वारा उद्गीत गाने का रहस्य बता देता हूँ। उद्गीत उधर का गीत है। उसे न वाणी बोलती है, कान, न आंख, न मन। यह राग केवल प्राण गाता है और इस से इसका नाम प्रणव है। ऐ राम! इस प्रणव को संसारी प्राण नहीं जानते। वह 'ओ३म्' को प्रणव मान कर सन्तुष्ट हो जाते हैं। प्रणव वह राग है जिसे केवल प्राण ही गा सकता है। मैं इसकी कुछ विधि वृहद्धारण्यक उपनिषद् में वर्णन करदी है इसके अधिकारी थोड़े मिलते हैं।"

राम—"यह बहुत ऊँची बात है।"

भरद्वाज--'हां ! यह न प्राप्त हो तो साधारण बहिरंग सत्संग सब देश और सब जगह में प्राप्त होता है। यह त्रिवेणी वाला बहिरंग प्रयाग स्थाई है। साधुसमाज संगम तीर्थराज है। इसकी सेवा करने से संसार के दुखों का नाश हो जाता है, जीवन बदल जाता है, शान्ति आजाती है और मनुष्य देखते देखते कुछ का कुछ बन जाता है।"

राम--"यह इसकी सचमुच बड़ी महिमा है।"

भरद्वाज--"हां ! इसमें कोई सन्देह नहीं है और तीर्थों का चाहे फल होता हो या न होता हो, कौन कह सकता है परन्तु इस तीर्थ में नहाने का फल तुरन्त उसी समय मिल जाता है। बहिरंग तीर्थराज के सेवन करने का फल ऐसी जल्दी प्राप्त होना असम्भव है। नाम रूप चाहे न बदले, स्वभाव गुण और कर्म बदल जाता है। कौआ कोयल बन कर मीठी वाणी बोलने लग जाता है और मछली खाने वाला बगुला हंस बन कर मोती चुन चुन कर खाता है। कम से कम बोल-चाल और भक्ता-अभक्त विचार में बड़ा परिवर्तन हो जाता है।

पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात।
सत्संग कर हंस भया, मोती चुन चुन खात॥
पहिले मन पर्वत बना, पत्थर कठिन महान।
सत्संग टांकी खाय कर, हो गया कंचन खान॥
पहिले मन नाला बना, बहता मैला नीर।
सत्संग गंगा से मिला, गंग समान गंभीर॥
पहिले मन था लालची, कामी कुटिल कुभाव।
सत्संग के प्रताप से, हो गया सुबुद्धि सुभाव॥

इस साधु समाज तीर्थराज की महिमा ब्रह्मा, विष्णु, महेष, नारद, शारद कोई नहीं गा सकता। साधु समाज संगम कल्प-वृक्ष है। जो इसकी छाया के नीचे आ गया उसकी सारी काम-

नायें सिद्ध हो जाती हैं। साधु समाज तीर्थराज वह शुद्ध, पवित्र और शीतल जल वाली गंगा है कि इसमें स्नान करने और परम पवित्र बचन रूपी जल के पान करने से संसार के तीन पापों का दुःख नाश हो जाता है। साधु संग का क्या कहना! साधु पर उपकारी, परस्वार्थी और परहितकारी होते हैं—

सुख देवें दुख को हरें, मेटें जगत उपाध।
भाग्य सुभाग्य उदय जब, मिलें कभी २ साध॥
नहिं कंचन नहिं रत्न धन, नहिं लालों की खान।
साध चरित परमार्थी, पारस परस समान॥
पारस में और सन्त में, अन्तर रहे महान।
वह लोहा कंचन करे, यह करे आप समान॥

संगत के फल का प्रभाव तुम जानते हो। आम की गुटली को केवड़े के जल से सींचो। केवड़े की सुगंध उसके फल में आ जायगी। तिल के तेल को चमेली और मोतिया के फूल से मिला दो वह फुलेल हो जायगा। वाटिका के समीप जाओ। फूलों की महक से चित्त प्रसन्न हो जायगा। नीम के जलते हुए पत्तों के पास से निकलो उसका कड़वापन चित्त को बिगाड़ देगा। सुसंगत से गुण और कुसंगत से अवगुण उत्पन्न होते हैं। ऐ राम! मनुष्य चाहे तो जीव जंतुओं का रंग-ढंग, रूप-गुण, स्वभाव उनको अच्छा संग देकर बदल सकता है। जब साधारण पदार्थों के मेल का ऐसा प्रभाव होता है तो फिर साधुओं के संग का फल लाभदायक क्यों न होगा!

तुम बन में तपस्वी बनकर जा रहे हो। क्या यह आश्चर्य-जनक और विचित्र बात नहीं है कि तप और तपस्या से पहिले तुम को तीर्थराज प्रयाग का दर्शन मिला? यह तप का फाटक और जप के ऊँचे कुल की सीढ़ी है।"

राम ने कहा—"अहो भाग्य! मैं आपके चरणों में आया।"

चौथा समुल्लास

राम-बाल्मीकि संवाद

राम कुछ दिनों प्रयागराज में रहकर भरद्वाज मुनि की संगत का लाभ उठाते रहे।

सत संगत मुद मंगल मूला। सोइ सिद्धि फल साधन फूला॥

सुख, आनन्द और मंगल की जड़ सत्संग है। साधन इसका फूल है और सिद्धि इसका फल है। सत्संग के पीछे क्या अवस्था आती है, वह कथा प्रसंग में सुनाई जायगी।

प्रयागवासियों ने सुना कि अवध कुमार आये हुए हैं। अगणित नर नारी उनके देखने के लिए आश्रम में आये। जो देखता था मोहित हो जाता था और सब मोहवश होकर कहते थे कि ब्रह्मा ने ऐसी सुन्दर मूर्तियाँ बनाई और उन्हें बन की कठिनाइयां सहने के लिए राजभवन से बाहर कर दिया! उसकी मति मारी गई। विष्णु ने जगत के पालन पोषण के निमित्त अच्छे अच्छे पदार्थ रचे और राम, लक्ष्मण और सीता का आहार कन्दमूल ठहराया। उसने भी बुद्धिमता से काम नहीं लिया। शिव ने और अनर्थ किया। ये कहां जप, तप, वैराग के योग्य हैं। इस काम के लिए उसे कठोर हृदय और कठोर भुजा वाले प्राणी चुनना चाहिए था।

कुछ दिनों आश्रम में रहकर राम ने भरद्वाज से विदा मांगते समय निवेदन किया—"मैं बन में जाकर कहाँ रहूं?"

ऋषि ने उत्तर दिया—"आप स्वयं सर्वज्ञ हैं, मुझसे क्या पूछते हैं और मैं क्या बताऊँ! जाइये, आगे चित्रकूट में बाल्मीकि ऋषि रहते हैं। वह आपको इस प्रश्न का उत्तर देंगे।"

राम उठ खड़े हुए। आगे राम, पीछे लक्ष्मण और इन

दोनों के बीच में सीता! अच्छा मनोहर दृश्य था। राम लक्ष्मण साधुओं के भेष में थे। सीता सुन्दर वस्त्र और आभूषण से सजी हुई थी। देखने वाले देखकर विस्मत हो जाते थे।

राम ब्रह्म थे, लक्ष्मण जीव थे और सीता प्रकृति थी। राम और लक्ष्मण के बीच में सीता आढ़ थी। जीव को ब्रह्म का दर्शन क्यों नहीं मिलता? क्योंकि प्रकृति बीच में आ जाती है। लक्ष्मण बहुत संभाल संभाल कर पांव रखते थे। उनका पांव राम या सीता के पाँव के आकार पर नहीं पड़ता था।

जब जीव रूपी लक्ष्मण को राम ब्रह्म के दर्शन की अभिलाषा होती थी, प्रकृति सीता कुछ ओट हो जाती थी। तब लक्ष्मण जीव को राम ब्रह्म क्षणमात्र के लिए दिखाई दे जाते थे और फिर सीता बीच में आ जाती थी और वह अपनी चाल चलने लग जाती थी।

इस प्रकार चलते हुये वह यमुना के तट पर पहुँचे। निषाद के सम्बन्धियों ने पार उतारा। तीनों ने यमुना में स्नान किया।

पहली भक्ति, दूसरा सत्संग, तीसरे सुकर्म।

भक्ति में सुवासना है। वह सत्संग पाकर सुइच्छा या शुभ इच्छा को उत्पन्न करने लग जाती है और तब अच्छे कर्म बनते हैं।

गंगा भक्ति है। सत्संग भक्ति का उत्तेजक है और यमुन कर्म की धार है।

यमुना में नहाकर राम ने आगे की तरफ पग बढ़ाया। गाँव वाले सुन सुन कर देखने आते थे। जहां यह ससताने के निमित्त किसी वृक्ष की छाया के नीचे बैठ जाते थे, भीड़ लग जाती थी। तीनों प्रेम की मूर्तियां थे और वह प्रेमियों से घिर जाते थे। सब अपना प्रेम प्रगट करना चाहते थे। कोई कलसे में पानी भर लाता है, कोई जङ्गल के फल, करोंदा, चिरोंजी, आम, जाम

सामने रख देता है और राम सब के साथ यथायोग्य वाणीविलास करते हैं।

स्त्रियाँ बहुत बकबासी और बातूनी होती हैं। कोई कहती थी—"वह बाप कैसे हृदय वाले होंगे जिन्होंने इन सुकुमारों को बन में भेजा है। दूसरी कहती थी कि कोन जाने कि ये मनुष्य हैं कि देवता हैं! अवश्य देवता हैं या स्वर्गलोक से पृथ्वी को शोभा देने के लिये आये हैं।"

तीसरी—"तभी तो इनके साथ कोई नहीं है। इनको किसी की सहायता की आवश्यकता ही नहीं है।"

स्त्रियाँ ऐसी कितनी बातें कह डालती थीं। पुरुष कहते थे—"आज्ञा हो तो हम आप की टहल-सेवा कर दिया करें।"

राम इनका भोलापन सुनकर कह देते थे—"माता-पिता की आज्ञा है हम ही तीनों बन में रहें। यही कारण है कि हम अपने साथ किसी को नहीं लाये।" वह बेचारे सुनकर चुप रहजाते थे। मुँह बन्द होजाता था। कहते भी तो क्या कहते!

गांव गांव की पगडंडियों से फिरते फिराते ग्रामवासियों को अपना दर्शन देते दिलाते और सब को सुखी करते कराते राम बाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पहुंचे। बाल्मीकि ने इन्हें दूर से देखा। मिलने के लिये गये। तीनों पांव पड़े। ऋषि ने उठा कर छाती से लगाया, आशीर्बाद दिया। फल-फूल, कन्द-मूल भेंट किया। यह सन्तुष्ट होकर बैठे।"

राम ने अपनी कहानी सुना कर पूछा-'कोई ऐसा स्थान बताइये जहाँ कुटी बना कर कुछ दिनों निवास करूं। सीता साथ है, नहीं तो किसी सघन वट की छाया में ठहर जाता।"

बाल्मीकि ने कहा-"राम! तुम ब्रह्म के अवतार हो, जगत के उद्धार, भक्तों के सुधार और देवताओं के उपकार के निमित्त तुमने नर शरीर को धारण कर रक्खा है और ऐसी लीला कर

रहे हो। मैंने तुम्हें देखा, मेरे जन्म २ की भक्ति की कमाई सफल होगई। खोया हुआ धन हाथ आगया। ऋषि-मुनि, जोगी जप-तप में आयु बिताते हैं और किसी बात का साक्षात्कार नहीं होता। तुमने सदेह, सगुण और साकार रूप में मुझे दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। अब मुझे कुछ भी करना धरना नहीं रहा। तुम तीनों का स्वरूप अन्तःकरण में आज प्रवेश कर गया। ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों एक साथ मिले और एक साथ ही उन का दरस परस और अनुभव हो गया।

तुमने नर लीला के आश्रित मुझ से स्थान का पता पूछा है। तुम पूर्ण सच्चिदानन्द ब्रह्म हो! सर्व व्यापक और जड़ चेतन में समाये हुये अखंड मण्डलाकार हो रहे हो। सारे स्थान तुम्हारे हैं, तुम्हारे लिये हैं और तुम्हारे ही आधीन हैं।' मैं कहूँ भी तो क्या कहूँ! तुमने पूछा है इसलिये उत्तर न देना भी अनुचित होगा। सुनोः—

तुम बसो उस घट में, जिस घट तुम्हारा ध्यान हो।
तुम बसो उस मन में, जिसमें ज्ञान और अनुमान हो ॥१॥
जो तुम्हारे चरित के, सुनने से उकताते नहीं।
उनके कानों में बसो तुम, जो भरम में आते नहीं ॥२॥
जिस को दर्शन हो गया है, राम के निज रूप का।
उसकी की आंखों में बसो, ए राम! निश दिन सर्वदा ॥३॥
दानी के हाथों में रहकर, दान और उपकार हो।
राम का स्थान यह है जगत का उद्धार हो ॥ ४ ॥
तीर्थों में प्रेम और श्रद्धा से, जो फिरते हैं चक्कर काटते।
उनके पावों में रहो, घूमो फिरो तुम नाचते ॥ ५ ॥
ज्ञानियों के ज्ञान में, और ध्यानियों के ध्यान में।
मेरे दाता! तुम बसो, ऐसे ही शुभ स्थान में ॥ ६ ॥
योगियों के योग में, साधक के साधन में रहो।

प्रेम जिनको है तुम्हारा, उनके मन में जा बसो ॥७॥
जो सुखी होते हैं, औरों की भलाई देख कर।
राम ! है अन्तःकरण, उनका तुम्हारा अपना घर ॥८॥
मंत्र में शुभ यंत्र में, शुभ तन्त्र में बसते रहो।
पुन्य भूमी सब हैं इनमें, प्रेम से रमते रहो ॥ ९ ॥
साक्षी के रूप में, जो देखते हैं जगत को।
इनके हृदय में निरन्तर, आत्मवत जाकर बसो ॥१०॥
त्याग कुल परिवार धन, और धाम भजते हैं तुम्हें।
राम सीता लक्ष्मण, तीनों वहाँ जाकर बसें ॥११॥
कर्म से मन वाणी से, जो दास सच्चे हो गये।
राम तुम उनमें बसो, मन बुद्धि उनके धो गये ॥१२॥
चाह कुछ चित में नहीं, चिन्ता मिटी दुविधा गई।
राम ! इनके घट को जाकर, करदो अब श्रद्धामयी ॥१३॥
गुरु की सेवा में हूं तत्पर, ऐसी करुणा कीजिये।
उनमें रहिये उनमें बसिये, उनकी रक्षा कीजिये ॥१४॥
तुम हो स्वामी मैं हूँ सेवक, मैं हूँ भिक्षु तुम दयाल।
मेरे अन्तर में बसो, और तुम करो मुझको निहाल ॥१५॥
सच्चिदानन्दम् अखण्म्, नित्य मुक्तम् सर्वदा।
दीन दुखियों के सहाई, तुम हो करुणा तुम दया ॥१६॥
भक्त हितकारी, अनाथों के हो सच्चे नाथ तुम।
भक्त अपना जानकर, अब रहना मेरे साथ तुम ॥१७॥

कहते-कहते बूढ़े ऋषि की धिग्घी बँध गई। आंखों से प्रेम के आँसू बह निकले और उनका सिर राम के चरणों में झुक गया। चित्त समाधित हो गया।

अलख ल ख-लख लखलिया, खुली दृष्टि से देख।
कहते सुनते ना बने, सूझा आत्म अलेख ॥
वह विदेह गति देह में, आकर बना सदेह।

दरस परस सत भावना, देख त्याग संदेह ॥
गुरु मूरति गति चन्द्रमा, चातक चित्त चकोर।
आठ पहर निरखत रहे, गुरु मूरति की ओर ॥

राम ने बाल्मीकि के सर को अपने हाथों से उठाया, आंसू पोंछे। "भगवन्! मैं तो आपका सेवक हूँ। इतनी दूर से चलकर आपही की चरणों की छाया में रहने को आया हूँ। इन चरणों को छोड़कर और कहाँ मेरा ठौर ठिकाना है!"

बाल्मीकि हँसे! राम का हाथ पकड़ लिया। एक खुली हुई जगह में लेगए, जो छोटी पहाड़ी की चोटी पर थी। स्थान दिखा कर बाल्मीकि ने कहा,-"यह स्थान रमणीक है। चित्रकूट पर्वत पर उँची जगह है। इसके नीचे वैतरणी नदी बहती है। इसे अपने निवास से शोभा धाम बनाइए।"

लक्ष्मण तो लकड़ी और घास फूँस लेने गए। बाल्मीकि और राम सीता पृथ्वी पर बैठ गए।

राम ने पूछा—"प्रभु! इस पहाड़ का नाम चित्रकूट क्यों पड़ा? और यह नदी वैतरणी क्यों कहलाती है?"

बाल्मीक ने उत्तर दिया—'चित्र कहते हैं छवि को और कूट नाम है टीला—ऊँचा ठीकरा और समूह का। जहां चित्रों का विचित्र समूह हो वह चित्रकूट कहलाता है। वह चित्रकूट पृथ्वी का हृदय चक्र है। तुम जिस वस्तु को देखते, सुनते, छूते और सूँघते हो, सबका गुप्त चित्र संस्कार रूप में तुम्हारे हृदय में बन जाता है और वह समय समय पर परिपक्व होकर अपना फल प्रकट करता है। जैसा तुम्हारा हृदय स्थल वैसा ही इस पृथ्वी मण्डल में यह चित्रकूट है। जिनको गुरु का सत्संग प्राप्त हो गया, उन्हें कुछ दिनों इस हृदय चक्र में बस कर श्रवण के पश्चात् सुमिरन, ध्यान, भजन, मनन, निदिध्यासन और साधारण साक्षात्कार की आवश्यकता होती है। इसलिए इस काम के

निमित्त तुमको यहां स्थल दिया गया है। यह निर्जन और एकान्त स्थान है।"

राम—"और यह वैतरणी क्या है?"

बाल्मीक—वै (कई कई, अनेक) तरन (तरना पारजाना) अनेक उपाधियों के बाद पार जाने का नाम वैतरणी हैं। इसे पार न किया गया तो नरकगामी होना पड़ता है। हृदय में विचार और विवेक उत्पन्न होता है और उसकी सहायता से अनेक बाद जगत के नाना प्रकार के उचित और अनुचित संस्कारों को त्यागना होता है। यहाँ रहकर तुमको यह काम कुछ दिनों करना पड़ेगा। अवध (शरीर की अवधि) में तुम प्रगट हुये। तीर्थराज प्रयाग में सावित्री कुल गुरु (भरद्वाज) मिला। सत्संग किया। यह साधन की पहली सीढ़ी थी। चित्रकूट में निवास करके मनन निदिध्यासन करना दूसरी सीढ़ी है। यहां इस अवस्था में आकर साधक-जन निवास करते हैं और तुमको भी यही कृत्य करना है और तुम्हारे पीछे लोग स्मरणार्थ कहेंगे—

चित्रकूट चिन्ताहरण, वैतरणी के तीर।
कछू दिना यहां रम गये, सिया लखन रघुवीर॥

राम इस सम्वाद से बहुत प्रसन्न हुये। लक्ष्मण ने तीनों के लिये झोंपड़ा बना दिया। बाल्मीकि अपने आश्रम को गये और राम सीता ने घास-फूँस बिछाकर पर्णकुटी में निवास किया।

पांचवाँ समुल्लास

चित्रकूट

राम चित्रकूट में बसे। पर्वत के निवासी ऋषि, मुनि, देवी, देवता, नाग और किन्नर सब मिलने के लिये आने लगे। राम सब का आदर सत्कार करते थे और वह प्रसन्न होकर जाते थे।

इनमें से एक को भी भ्रम नहीं हुआ कि राम ब्रह्म के अवतार नहीं हैं।

चित्रकूट में कोल, किरात, भील, गौंड़ मनुष्य बसते थे। नङ्ग-धड़ंगे तन पर कपड़ा तक नहीं रहता था। जब यह सामने आकर खड़े हो जाते चित्र के समान प्रतीत होते और राम इन्हें देखकर विह्वल और गद्गद् होजाते थे। प्रेम परस्पर का बर्ताव है। जैसें उदई भानु से वैसे भानु उदई से।

जङ्गली मनुष्य पहाड़ों के फल फूल अधिकता के साथ लाकर भेंट किया करते थे। राम ने कभी इनका तिरस्कार नहीं किया। और उनका बर्ताव उनके साथ वैसा हा था जैसा लक्ष्मण के साथ था।

यह कहते—"नाथ! हम तुम्हारी क्या सेवा करें! कंदमूल, झड़बेरी, करोंदा और कमलगट्टा के अतिरिक्त कुछ नहीं होता! चिरोंजी होती है। क्या लायें! आपके योग्य कोई वस्तु नहीं है।"

राम हँस देते—"तुम तो हो। तुम्हारा भाव तो है! तुमको देखकर मैं तृप्त रहता हूं।"

इतना ही सुनकर वह मग्न होजाते थे और अपने भाग्य को सराहने लग जाते थे। जङ्गलियों ने कुटी के इर्द-गिर्द हरे हरे गाछ लगाये। घास फूँस के पौधे जमाये। यहाँ एक सुन्दर बाटिका बन गई।

गाछ फलने फूलने लग गये। पर्वत शोभायमान हो गया। जिधर दृष्टि जाती थी हरा ही हरा और भरा ही भरा दिखाई देता था। लाल, पीले, नीले और स्वेत फूल खिले हुये ऐसी शोभा देने लगे जैसे किसी चतुर चित्रकार ने चित्र खींच कर सामने खड़ा कर दिया हो।

पशु पक्षी पहले तो डर कर भाग जाते थे। कुटी के समीप नहीं आते थे। फिर धीरे-धीरे यह हिलते गये। फिर तो यह

दशा होगई कि कुत्तों के समान यह पीछे-पीछे रहने लगे। सीता जहां अपने हाथ को हिलाती ये दौड़ते हुए चले आते थे और उसके हाथ से घास-फूँस फल-पत्ते खाने लगते थे।

चित्रकूट का पर्वत रमणीक हो गया था और राम और सीता अयोध्या का सुख भूल गये।

जङ्गल रमणीक था सुहाना। आनन्द का चैन का ठिकाना॥
गायें कहीं दूब चर रही थीं। पेट अपने उसी से भर रही थीं॥
पक्षी वृक्षों में चहचहाते। अनहद की रागिनी सुनाते॥
कोई भी किसी से था न भयभीत। पक्षी पशु सभी हुए मीत॥
बन उपवन स्वर्ग बनगया था। जो था वही दृष्टि में भला था॥

जङ्गली स्त्रियां सीता की सेवा में लगी रहती थीं। इन लोगों में नगर-वासियों की सभ्यता नहीं थी। अनपढ़ थे लेकिन नगर वाले इनका सा सहज स्वभाव प्रेम-प्रीति और प्रतीत कहां से लाते। यह तन बने हुए राम को अपना आत्मा समझते थे। और जीव ब्रह्म सब समान दृष्टि-गोचर हो रहे थे।

जहाँ राम राजा वहाँ है अयोध्या।
जहाँ जीव जन्तु वहीं ब्रह्म माया॥
नदी नाले पर्वत सभी बोलते थे।
पशु पक्षी निर्द्वन्द हो डोलते थे॥
किसी को किसी से कहाँ शत्रुता थी।
यहां सिंह और बकरी में मित्रता थी॥
कहे कोई कैसे कि पर्वत था जङ्गल।
वहाँ सब जगह सुख और चैन मंगल॥

महारामायण अवध खण्ड का द्वितीय भाग समाप्त

दूसरा अवधखण्ड

तृतीय भाग

पहिला समुल्लास

दशरथ की दशा

निषाद लौटा। सुमन्त उसकी बाट देख रहे थे। निषाद ने बोले—"राम नहीं आये। किसी का कहना नहीं माना। अप मन का किया। मेरा कहना सुनना व्यर्थ हुआ।"

निषाद ने समझाया—'तुम ज्ञानी ध्यानी पंडित और मंत्र हो। तुमको यों विलाप नहीं करना चाहिए। जाओ! कौ जाने अयोध्या की इस समय क्या दशा होगी!'

सुमन्त रथ पर बैठे। निरभियां घोड़े बोल नहीं सकते थे फिर भी उन्हें मनुष्य से अधिक समझ थी। जान गय कि रा अब नहीं आयेंगे। सुमन्त हार्दिक विलाप करते हुए रात समय अयोध्या में पहुँचे। मन में विकल थे कि किसी को क्य समाचार सुनायेंगे। महाअपराधी की दशा थी। किसी प्रका महल के समीप पहुँचे। वह सुनसान जंचने लगा। अँधेरा गु छाया हुआ! रथ और घोड़ों को घुड़साल में छोड़ा। दशर कोप भवन से उठकर कौशल्या के महल में चला आए थे।

सुना कि सुमन्त आ गए। बुला भेजा। वह पांव पड़े राजा ने छाती से लगाया- "कहो मित्र! राम ने क्या संदेश दिया? यह तो मैंने जान लिया राम सत्यवादी और सत्यव्रत हैं मेरे समान पतित नहीं हैं। अच्छा वहां क्या?"

सुमन्त बोले—"मैंने उन्हें बहुत समझाया। यह भी बताय कि महाराज आपके वियोग में जी नहीं सकेंगे।" वह कह

गे— "सुमन्त ! मैं अपने जीते जी पिता के बचन को झूंठा न होने दूंगा। तुम जाकर उनको शान्ति दो। मैं ठीक चौदह वर्ष बीतने पर आ जाऊंगा। मेरा दुख पिता जी को दुखी न करने पावे। ऐसा काम करना कि उनका चित्त सावधान रहे। जब तक मैं श्रृङ्गपुर नहीं पहुँचा था, तब तक वह बार-बार यही कहते रहे। नौका पर चढ़ने के पीछे मुझसे फिर कहा. पिता जी और माता जी को समझाना। हानि लाभ, जीवन, मरण, यश अपयश को विधाता ने अपने हाथ में रक्खा है। जो होना था वह होगया। सबको मेरा नमस्कार और प्रणाम कहना। डोंगी पर बैठे और गंगा के पार चले गए।"

फिर सुमन्त ने जो कुछ निषाद ने सुनाया था, एक-एक बात दुहरादी और उनके चित्रकूट पर्वत पर निवास करने का समाचार भी सुना दिया।

सुमन्त के चुप होने पर दशरथ का मुँह खुला—

बन गया दशरथ का प्यारा हाय-हाय !
क्या हुआ आंखों का तारा हाय-हाय !१॥
सुख नहीं मुझको दिया संसार ने।
शत्रु ने बेमृत्यु मारा हाय-हाय !२॥
भ्रष्ट बुद्धि भ्रष्ट तन मन हो गया।
मारा मारा मारा मारा हाय-हाय !३॥
राम लक्ष्मण बन गए सीता गई।
खोया जीवन का सहारा हाय-हाय !४॥
मैं तड़फता हूं बिलकता रहता हूं।
है धरा सर पर अङ्गारा हाय-हाय !५॥
डूबता हूं दुख विपत के सिन्ध में।
हो गया कैसा सितारा हाय-हाय !६॥

फंस गई है नाव अब मंझधार में।
दूर है कोसों किनारा हाय-हाय !७॥

दशरथ की दशा देखकर सुमन्त घबड़ाया। खाट के पास केवल कौशल्या रानी थी। वह देवी थी, रात दिन पति की सेवा में लगी रहती थी। वह भी बहुत व्याकुल हुई। इतना रोने और विलाप करते दशरथ को हिचकियां आने लगीं। दो-चार क्षण के पीछे यह आप ही आप बन्द हो गई और दशरथ बेसुध हो कर खाट पर पड़ रहे।

सुमन्त ने कहा – 'माता ! महाराज को नींद आगई। इन्हें सोने देना। इनके दुख की औषधि नींद ही है।"

यह कहकर सुमन्त अपने घर चले गए।

दूसरा समुल्लास

श्रवण की कहानी और दशरथ की मृत्यु

आधी रात के समय दशरथ की मूर्छा गई। आंख खुली हाय राम ! हाय राम ! का शब्द मुँह से निकला। इधर उधर दृष्टि गई। दीपक जल रहे थे। दशरथ को कुछ दिखाई नहीं दिया – "देवी कौशल्या ! तू है या कहीं चली गई ?"

कौशल्या—"महाराज ! मैं खाट को छोड़कर कहीं नहीं गई। पास ही बैठी हूँ।"

दशरथ—"तू दिखाई नहीं देती और तेरी बात ऐसी आ रही है जैसे तू दूर से बोल रही है।"

कौशल्या ने राजा के सिर और माथे पर अपना हाथ फेरा—"प्राणनाथ ! मैं पास ही बैठी हूँ ! क्या चाहिए ?'

दशरथ—"देवी ! मैंने तेरे साथ अनुचित बर्ताव किया

अब मुझे पछतावा हो रहा है। जिसे मैं प्राणप्यारी कहता था, वह प्राण की घातिका निकली और तूने अन्त तक मेरा साथ दिया।"

कौशल्या—"पतीश्वर! इसमें किसी का दोष नहीं है। यह दैवगति है। दैव जो चाहता है करता और करा लेता है। मनुष्य की मति मारी जाती है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। क्या मैं आप को पानी पिलाऊँ?"

दशरथ—"हां! प्यास लगी है।"

कौशल्या ने पानी पिलाया। वह हाय राम! हाय राम! करते हुए फिर खाट पर पड़ रहा।

कौशल्या—"नाथ! अब धीरज धरिये। राम तो बन को गये। वह चौदह वर्ष तक न आयेंगे। आशीर्वाद दीजिये कि वह कुशलपूर्वक अवध में आवें और आपको उनके देखने का सुख प्राप्त हो।"

दशरथ—"देवी! यह सुख तो गया! गया हुआ अब फिर नहीं आता। हाथ पांव ढीले हो रहे हैं। आँखें पथरा गईं। यह सब मृत्यु के चिह्न हैं। मृत्यु मेरे सर पर खेल रही है। अब मैं जी नहीं सकता।"

कौशल्या रोने लगी।

दशरथ—"अब रोने धोने से काम न निकलेगा। तू शान्त रह। राम आयेंगे तू देखेगी. मैं न देखूँगा। राम से कहना तुम्हारा वियोग दशरथ के लिए दुःसह हो गया। आँखों की ज्योति मारी गई। तुम बन को न जाते तो दशरथ कभी न मरता।"

कौशल्या ने अपने आँसू पोंछे। मैं अभागी हूं। राम चले गये। मैंने इन आँखों से उन्हें जाते हुए देखा और अभागे प्राण तन से नहीं निकले।

दशरथ—"देवी! तूने सच कहा। जो कुछ होता है वह कुछ तो अपने कर्मों का फल है और कुछ दैवगति से होता है। अब मेरे कूच का समय निकट चला आ रहा है। मैं तुझे अपनी युवावस्था का वृत्तान्त सुनाता हूँ।

"रानी! इस देश में एक वैश्य ऋषि हुआ है। उसका नाम श्रवण था। उसके माँ बाप दोनों अँधे थे। इस श्रवण की स्त्री करकसा थी। वह अँधे सास सुसर को बड़ा कष्ट देती थी। श्रवण जितनी अपने मां बाप की भक्ति करता था उसकी बीबी उतना ही इन अँधों को रात दिन सताया करती थी और कोसती रहती थी। ये बेचारे चुपके रहते थे। श्रवण ने स्त्री को बहुत समझाया। उसने अपने स्वभाव को नहीं छोड़ा। उस स्त्री को खाना देना भी बुरा लगता था। जब श्रवण दुकान से आता, इन्हें न्हलाता-धुलाता अपना खाना खिलाता और आप कई-कई दिन भूखा रहता था। वह बड़ा अच्छा मनुष्य था। जब स्त्री मां बाप को बहुत सताने लगी, उससे न देखा गया। उसने घर छोड़ा, दुकान छोड़ी और स्त्री और बाल-बच्चों तक को छोड़ दिया। एक बहंगी बनाई। उसके एक तरफ माँ को बिठाया और दूसरी तरफ बाप को बिठाया और रातों रात घर से भाग गया। वह अयोध्या के इर्द गिर्द घूम फिर कर चक्कर लगाता, भीख मांगता, वृक्ष के नीचे या धर्मशालाओं में ठहर कर खाना पकाता। माँ बाप को न्हिला धुला कर पहले उन्हें खिला पिला देता था। पीछे आप खा पीकर उसी बहंगी के पास सो रहता। यह उसका नित्यकर्म था और वह दस बारह वर्ष तक यही काम करता रहा। ऐसा माता पिता का भक्त न किसी ने कभी आँखों से देखा न कानों से सुना।"

"रानी! उस समय मैं युवावस्था में था और शब्द भेदी बाण चलाने में प्रवीण था। रात दिन शिकार में रहता था।

एक दिन सायंकाल के समय सरयू नदी के तट पर धनुष बाण लिए आखेट (शिकार) की खोज में घूम रहा था। आकाश में काली-काली घटा छागई थीं। कुछ दिखाई नहीं देता था। सरयू के तट पर पानी भरने का शब्द सुनाई दिया। मैंने समझा कोई हिरन पानी पी रहा है। बाण को धनुष से छोड़ा और वह उछलता कूदता निकला, निशाने पर पहुंचा, शब्द सुनाई दिया— "हाय ! किस निर्दई पत्थर के कलेजे वाले ने मुझे मार दिया ! अब मेरे मां बाप की कौन सेवा करेगा ! उसने तीन हत्यायें कीं। मेरे साथ मेरे मां बाप को भी मार दिया " रानी ! इनबातों के सुनते ही मेरे कान खड़े हुये। मैंने अपने मन में कहा-"दशरथ आज तूने किसी निर अपराधी को मार दिया।"

वहाँ गया जहां से शब्द आया था। देखा एक साधू पानी में पड़ा हुआ निर्जीव मछली के समान तड़प रहा है। मैंने उस से कहा—"मैं दशरथ इस देश का राजा हूं। मैंने तुम्हारे कमण्डल में जल भरने के शब्द को किसी हिरण को पानी पीते हुए अनुमान किया। बाण चला दिया। मुझे बड़ा शोक है। अब जो कहो वह करूँ !" उसने उत्तर दिया—"तूने अनजान में यह दुष्कर्म किया है नहीं तो मैं श्राप देता और तू क्षणमात्र में जल कर भस्म होजाता। मैं श्रवण हूँ। पांच सौ पग की दूरी पर मेरे अन्धे मां बाप मिलेंगे। वह प्यासे थे। मैं उनके लिये पानी लेने को आया था। अब मैं मर रहा हूँ। तू मेरे कमण्डल में पानी भर कर लेजा और मुझे पानी से बाहर खींचकर तट पर लिटा दे। उन्हें पानी पिलादे। मैं अधिक से अधिक पाँच मिनट तक जीऊँगा फिर मर जाऊँगा।"

"रानी ! मैंने ऐसा ही किया और जल से बाहर आते ही श्रवण ने अपने प्राण त्याग दिये। मैं बहुत पछताया। लेकिन हो क्या सकता था ! मुँह से निकली हुई बात और धनुष से

उछला हुआ बाण फिर कभी नहीं लौट सकता।"

"रानी! मैंने कमण्डल में पानी भरा। उसे लेकर अन्धों की खोज में चला। वह दूर नहीं थे और दोनों दुखी होकर कह रहे थे—'बेटे श्रवण! तू किधर चला गया। पहले इतनी देर कभी नहीं लगाता था। आज तुझे क्या होगया। तू अन्धों का सहारा है। तेरे बिना हमारा जीवन सम्भव नहीं है। बेटे! जल्द आजा हम तड़प रहे हैं।"

मैंने दबे पांव उनके पास जाकर कहा—"लीजिये पानी पीजिये।" दोनों चौकन्ने होगए! तू कौन है जो हमें पानी पिलाने आया है? हमारा पुत्र श्रवण क्या हुआ? कहां चला गया? मैंने सारा वृतान्त उन्हें कह सुनाया। वह रोए, चिल्लाए, तड़पे, घबराए। अन्त में मझ से कहा। "चिता बना, अब हम नहीं जी सकते। जा हमारे पुत्र की लाश उठाला। तीनों एक साथ एक ही चिता पर जलेंगे।"

"रानी! मैं उलटे पांव गया। श्रवण की लाश पीठ पर लाद लाया। लकड़ियां इकट्ठी कीं। चिता बनाई और श्रवण की लाश को उस पर रक्खा। मां बाप दोनों बेटे की लाश पर गिरे और बिलखने लगे।"

हाय बेटे! तू मरा जीते हैं हम।
पानी दुर्लभ आँसू को पीते हैं हम ॥१॥
तू नहीं नर देवता का रूप था।
तू मरा जीते हैं क्यों माता पिता ॥२॥
हमको मरना चाहिए था तू मरा।
नर्क में हम स्वर्ग को तू चल बसा ॥३॥
मर गया तू हाय बेटे! हाय हाय।
मर मिटा तू हाय बेटे! हाय हाय ॥४॥
जिसने तुझको मारा होगा वह दुखी।

कैसे अपराधी कभी होगा सुखी ॥५॥
मरते हैं हम हाय तेरे शोक में।
वह मरेगा अन्त में इस रोग में ॥६॥
पुत्र उसका हाथ से खो जायगा।
राजा अपनी करनी से पछतायगा ॥७॥
मर मिटेगा मर मिटेगा यह नरेश।
क्या बचायेंगे इसे ब्रह्मा महेश ॥८॥
पुत्र का संसार में सहकर वियोग।
मर मिटेगा राजा सहते सहते शोग ॥९॥

"रानी! वह यों रोते रहे। बीच में बेटे की लाश रक्खी, लेट गए और मरते समय मुझे श्राप दे गये।"

"ओ दशरथ! तूने हमारा श्राप सुन लिया। कोई लोक परलोक का देवता इसके प्रभाव से न बचा सकेगा। हां तेरे सन्तति नहीं है यह हम जानते हैं। समय पर बेटे उत्पन्न होंगे और तू उनके वियोग के दुख में हमारे जैसा दुखी होगा।"

"रानी! अन्धों ने मुझे यह श्राप दिया और मर गये। मैंने चकमक से आग लगायी, चिता को जलाया। लकड़ी बहुत थीं, वह जलकर राख होगये।"

मैं घर पर आया। संसार के व्यवहार में अन्धों के श्राप को भूल गया। आज इस समय इसका स्मरण हुआ, जो तुझे सुना दिया।

दशरथ ने फिर विलाप किया—

क्या हुआ बन को चले तुम हाय राम।
मेरी गोदों के पले तुम हाय राम ॥१॥
इस समय मेरा सहाई कौन है।
बाप बेटा और भाई कौन है ॥२॥

था अकेला और अकेला जाऊँगा।
करनी जैसी वैसा ही फल पाऊँगा ॥३॥
इस बुढ़ापे में मुझे बेटा मिला।
पाप से मेरे जंगल को चला ॥४॥
हाय सीता हाय लक्ष्मण हाय राम!
अब नहीं मुझको किसी से कोई काम ॥५॥

हाथ पाँव ठंडे हो गये, अङ्गड़ाइयां लीं। गले में कुछ वायु और कफ का आकर्षण हुआ। कण्ठ बोलने लगा। आँखें बंद हो गईं और अवधपति दशरथ का परलोक गमन होगया।

तीसरा समुल्लास

अयोध्या में कुहराम

अभी कुछ रात थी कि दशरथ का देहान्त हो गया। कौशल्या के सर पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा! उधर बेटा बन को गया, इधर पति का वियोग हुआ। रोने चिल्लाने लगी। उसके रोने का शब्द सुनकर बांदियां और दासियां उठ कर आईं। सुमित्रा और कैकेई को सूचना दी गई वह भी आईं। दशरथ के अन्त समय में कोई भी इनमें से पास नहीं था और न किसी ने उसकी सेवा की। ऐसा क्यों हुआ? इसे परमात्मा ही जानता होगा उसके जीवन का यह परिणाम हुआ जो बहुत ही उपदेशजनक है—

जो आया है जायेगा, जायेगा संसार।
रहने कोई आया नहीं, झूठा है अहंकार ॥१॥
मान बड़ाई ईर्षा, माया का जंजाल।
भूले भरमे भटक कर, अंतकाल विकराल ॥२॥

काम क्रोध मद त्याग कर, भज सतगुरु करतार।
काम न आयेगा तेरे, कुल कुटुम्ब परिवार ॥३॥
काल-काल अब जनि करे, आज आज कर आज।
आज के काम को काल पर, छोड़े होय अकाज। ४॥
आज कहे मैं काल भजूंगा काल कहे फिर काल।
काल अचानक आगया, संभला नहीं संभाल ॥५॥
काल काल में काज है, आज काज को साज।
आज आज है हाथ में, काल काल सिर गाज ॥६॥
आज काल करता रहे, पहुंचा आकर काल।
काल केस कर में गहे, मारे तेग निकाल ॥७॥
पाव पलक की सुध नहीं, करे काल का साज।
काल अहेरी ताक में, मारे जैसे बाज ॥८॥
समय समय पर काम कर, निष्फल काम को त्याग।
कहाँ भरोसा काल का, काल है फनधर नाग ॥९॥
इक्षाकू, रघु चल बसे, मानधाता गया खोय।
शिव, दधीचि, हरिश्चन्द्र गए, काल नींद में सोय ॥१०॥
मैं मैं करता मर गया, मैं था बुरी बला।
अहंकार के हाथ से, कहदे कौन बचा ॥११॥
राम लखन बन को गए, दशरथ काल के देश।
किसकी आशा तू करे मन गुरु उपदेश ॥१२॥
अवसर आज का हाथ है, काल मिले यह नाहिं।
सोच सोच मन सोचले, ले सतगुरु की छांहि ॥१३॥

सब आए। दशरथ का शरीर मिट्टी के ढेर के समान पृथ्वी पर पड़ा था। क्या यह वही तिलकधारी, बलवान अवधपति था जिसका नाम सुनकर सब भय से काँप उठते थे। आज उसकी देह भयानक रूप में दिखाई दे रही है। सांस तक नहीं आती। मक्खियाँ भिनक रही हैं और वह नाक पर बैठी हुई

मक्खी तक को नहीं हटा सकता।

अन्त समय में किसी ने कभी किसी का साथ नहीं दिया। काल कभी कभी अचानक आता है, नहीं तो वह बराबर चेतावनी देता रहता है। चेतवान नर चेत रहते हैं और अचेत मारे जाते हैं।

कूच का नगाड़ा बजा, सोच सोच भाई।
सोच समझ काज बना, काज में भलाई॥१॥
काले केश स्वेत हुए, सुने नहिं काना।
दृष्टि ज्योति क्षीण भई, भूला क्यों दीवाना॥२॥
हाथ पाँव सख्त हैं, चलना फिरना दुस्तर।
केले के पत्ते कांपते, वायु से थर थर॥३॥
सुत दारा रूंठ गए, साथ कौन देवे।
धन सम्पति अलग हुई, हाथ क्या लेवे॥४॥
खाली हाथ आया प्राणी, खाली हाथ जायगा।
सोच के कमाई कुछ कर, अन्त में पछिताएगा॥५॥

महल में कुहराम मच गया! रोना पीटना आरम्भ हुआ। यह भी इस व्यावहारिक जगत का झूठा स्वांग और दिखावा है, रोने वाला किसके लिए रोता है? अपने लिए या मुर्दे के लिए सच्चा हित होता तो एक तो काम आता। यहां कोई काम नहीं आता।

झूठा जग, व्यौहर, मित्रो झूठा जग व्यौहार॥टेक॥
मात पिता भाई सुत बन्धु, सम्बन्धी परिवार।
तन से प्राण होत जब न्यारे, घर से देत निकार॥१॥
तन की त्रिया तन से लिपटी, भोगे भोग अपार।
तन से प्राण होत जब न्यारे, टेरे प्रीति पुकार॥२॥
कोई किसी का मीत न देखा, नहीं किसी में सार,
तन से प्राण होत जब न्यारे, फिर नहीं प्रेम न प्यार॥३॥

सुमन्त, वशिष्ठ, जाववालि, सारे मन्त्रीगण शोक समाचार सुन सुन कर आ पहुँचे। जब कोई मनुष्य रोगी हो जाता है तो औषधि बताने वाले बहुत इकट्ठे हो जाते हैं। यों ही जब कोई मर जाता है तो झूठी ढाढ़स देने वाले चारों तरफ से घेर लेते हैं।

कौशल्या और सुमित्रा को सब समझाने लगे। दशरथ रोने के योग्य नहीं थे। ऐसा जीवन-मरण विधाता सब को प्रदान करें! जीते जी राम का मुँह देखते थे और मरते समय राम के वियोग में शरीर को त्याग दिया। यह रानियां इन बातों के समझाने वालों से अधिक समझती थीं, किन्तु यह स्यापा की सभ्य रीति है जो परम्परा से चली आ रही है।

बहुत सी स्त्रियां कैकेई को उसके मुँह पर गालियाँ देती थीं कि इसीने बना बनाया खेल बिगाड़ा और बसे बसाए घर को उजाड़ा। कैकेई को बुरा लगा। वह उठ कर चली गई। कौशल्या और सुमित्रा पति के समीप बैठी हुई रोती रहीं।

वशिष्ठ ने इन्हें समझाया—"रोना पीटना बन्द करो। लकड़ी की किश्ती मंगा कर उसमें तेल भरो और लाश को उसमें रख दो। कोई मनुष्य काशमीर जाए। जब भरत आ जायेंगे, उनके हाथ से महाराज का अन्तिम कर्म किया जायगा।" और ऐसा ही किया गया।

चौथा समुल्लास

भरत आगमन

उस समय रथ किस प्रकार के होते थे, हम नहीं जानते। हिन्दुओं की प्राचीन कला-कौशल का अब किसी को ज्ञान और

स्मरण नहीं रहा। यह सुनते हैं कि वह शीघ्रगामी थे और बहुत जल्द रास्ता समाप्त कर लेते थे।

अयोध्यावासी काश्मीर पहुंचे। भरत से मिले, जल्दी चलने की प्रार्थना की। यह किसी ने नहीं बताया कि राम का बनवास और दशरथ का देहान्त हो गया। लेकिन भरत कई दिनों से बुरे-बुरे भायानक स्वप्न देखते थे। उनका चित्त विकल था। अवध के कर्मचारियों से बहुत कुछ पूछा। किसी ने यथोचित उत्तर नहीं दिया। वह केवल एक बात कहते थे—"गुरु ने जल्द आने की आज्ञा दी है।"

वह अपने नाना नानी से विदा होकर डाक की चाल, अयोध्या में आये। चहल पहल नहीं थी। नगर शोभाहीन था। सबके मुँह पर उदासी बरस रही थी। भरत को देखा। बोले नहीं, न नमस्कार किया। यह चकित थे कि ऐसा क्यों है? पहले तो उनके साथ कभी ऐसा बर्ताव नहीं किया गया था।

उसी दशा में यह कैकेई के महल में पहुंचे। माता ने बेटे का शुभ आगमन मनाया। प्रसन्न हुई। इन्होंने इसका पांव चूमा। उसने छाती से भरत और शत्रुहन दोनों को लगाकर आशीर्वाद दिया।

भरत ने पूछा—"माता! अयोध्या की दशा क्यों बिगड़ी हुई है? क्यों रङ्ग में भङ्ग पड़ गया है? उसकी शोभा फीकी प्रतीत होती है। रास्ते में किसी ने न मुझसे बात चीत की, न यहाँ का समाचार सुनाया।"

कैकेई बोली—"तब तुमको यहां के समाचार की सूचना नहीं दी गई?"

भरत—"मैं कुछ नहीं जानता।"

कैकेई—"अब आ गए हो। अपने कानों सुनोगे, अपनी आंखों देखोगे। अपने आप जानोगे और अपने हाथों करोगे।"

भरत--"तो कुछ तो बतादे ।"

कैकेई—"बात यों हुई। महाराज ने तुमको कपट छल से काशमीर भेज दिया। कौशल्या की सम्मति से राम को युवराज करना चाहा। मैं भोली भाली और सीदी सादी हूँ। मेरा स्वभाव तुम जानते हो। मैं महाराज के लप्पो शप्पो और झूंठे प्रेम भाव में भूली हुई थी। रात को नगर में दीपावली थी। उत्सव मनाया जा रहा था। मन्थरा हाट में गई। धूम धाम देखी! पूछा और समाचार पाने पर मेरे पास दौड़ी आई। इस अवसर में उसने मेरी बड़ी सहायता की। नहीं तो काम बिगड़ गया था। उसने मुझे समझाया बुझाया। मैं कोप भवन में गई महाराज ने किसी समय मुझे दो वर देने को कह रक्खा था। मैंने सौगन्द देकर उन्हें मांगा। राम को चौदह वर्ष का बनवास और भरत को राज दो। राम तो बन को गये और महाराज ने परलोक का रास्ता लिया। तुम काशमीर में थे। राजा कोई नहीं है। सब तुम्हारी बाट देख रहे हैं। यह उदासी का कारण है। अब मन्थरा की यथोचित सम्मति से अखंड राज करो।"

भरत ने बड़ी सावधानी से माता की बातें सुनीं। उनके मुँह से 'हाय' का शब्द निकला और वह अभी तक खड़े थे या ताड़ के कटे हुए वृक्ष के समान धम से गिर पड़े। धमाके का शब्द हुआ।

कैकेई उठाने दौड़ी। अरे! यह क्या हो गया? "पुत्र उठो। चिन्ता न करो। तुम्हारे पिता बूढ़े थे। उन्हें तो एक दिन मरना ही था। राम साधु हैं। तुम से सच्चा और गहरा प्रेम रखते हैं। उनकी ओर से कोई खटका नहीं। मैंने कौशल्या से अपना बदला लिया। मन्थरा ने बड़ा काम किया है। उसे कुछ पारितोषिक दो और राज करो।"

भरत के घाव पर नौन पड़ा। वह बिल्ला उठे। बिलबिला

उठे ! आह ! आह!! हाय ! हाय !! क्या किया !
क्या बिगाड़ा था विधाता ने तेरा ।
सर पै मेरे आ पड़ी कैसी बला ॥
हा पिता ! हा राम ! हा सीता सती ।
हाय ! प्यारे सूरमा लछमन जती ॥
आके देखो तुम भरत की अब दशा ।
जीता है या जीतेजी वह मर गया ॥
क्यों पिता जी चल बसे सुरधाम को ।
क्यों नहीं सौंपा मुझे श्रीराम को ॥
क्या करूं कैसे जीऊँ कैसे रहूं ।
चुप रहूँ किसको विथा अपनी कहूँ ॥
हाय सीता ! हाय लक्ष्मण !! हाय राम !!!
हाय माता ! क्या किया यह तूने काम ॥
जीते जी बेमृत्यु के मारा मुझे ।
क्या कहूँ क्योंकर कहूं माता तुझे ॥
ब्रह्म के अवतार थे श्रीरामचन्द्र ।
सृष्टि के आधार थे श्रीरामचन्द्र ॥
तूने उनसे कर दिया मुझको विमुख ।
राज पाकर क्या मिलेगा मुझको सुख ॥

रो धोकर भरत बेसुध हो गये । आंखें पथरा गईं । नाड़ी शून्य हो गई । लोग दौड़े । समझा भरत भी सुरधाम को चल बसे । पिता और भाई के वियोग के दुःख को नहीं सह सके । मन्थरा उनके मुँह पर केवड़ा जल छिड़कने को लाई । अभी वह छिड़कने भी न पाई थी कि शत्रुहन की दृष्टि उस पर पड़ी । दौड़कर कूबड़ पर एक लात लगाई । वह पृथ्वी पर गिरी, चिल्लाने लगी । इतने में भरत की आंख खुल गई । शत्रुहन से बोले—"इसे न मारो । स्त्री जाति है । इसने बुरा किया । अब मैं यहां

न रहूँगा। मुझे कौशल्या के महल में ले चलो।"

पांचवां समुल्लास

भरत-कौशल्या

शत्रुहन जी भरत को थामे हुये कौशल्या के महल में पहुँचे। उसे इनके आगमन का समाचार मिल गया था। सुनाकि भरत आ रहे हैं, उठी। इतने में भरत को आते हुये देखा, दौड़ी। पकड़ कर छाती से चिपटा लिया। माथा चूमा। पकड़ लाई और गोद में बिठा लिया। गाय बछड़े के मिलाप का दृश्य था। जब बछड़ा गाय के पास आता है, वह उसे चाटने लग जाती है। दिल से कौशल्या भरत को लाड़ करने लगी। इसकी दृष्टि में राम भरत थे और भरत राम थे। वह दोनों में अंतर नहीं समझती थी।

भरत की आंखों से आँसू की धारा बह निकली। रोने को तो कौशल्या ने भी रो दिया। इसका रोना कुछ और था भरत का रोना कुछ और था।

भरत बोले—"माई, मैं कैकेई की सम्मति में कभी नहीं था। मैं अभागा हूं और अनर्थ का कारण हो गया। राम क्यों बन गये? इसका कारण मैं हूं। पिताजी क्यों परलोक को चले गए? उसका कारण मैं हूं। ऐ मातेश्वरी! यदि राम के बनवास में मेरी सम्मति रही हो तो जो पाप दिन के समय सोने वाले को लगता है, मुझे भी लगे। जो अपराध गौ-हत्या, ब्रह्म-हत्या, पुत्री-हत्या से होता है, वह मुझे भी हो। मैं राम का भाई ही नहीं हूँ, उनका भगत, दास और सेवक हूं। वह मेरे ईश्वर हैं। माई! मैं तेरी शपथ खाकर कहता हूँ सूर्य्य, चन्द्र,

अग्नि को साक्षी देता हूँ कि मैं कैकेई के मन्तव्य को जानता भी नहीं था....."

कौशल्या--"चुप बेटे ! चुप ! तू मेरे लिए राम ही है। मैं जानती हूं कि तू क्या है। सौगन्ध क्यों खाता है।"

भरत--"राम, लक्ष्मण और सीता का दर्शन करा दे।"

कौशल्या--'धीरज धरो ! समय पर तुम सब मिलोगे और संसार में तुम्हारे भैयापन का उदाहरण दिया जायगा। घबड़ाते क्यों हो ?"

भरत--"माई ! मैं फिर कहता हूँ कि वेद के बेचने, परमार्थ के मोल लेने, लोभ, मोह, काम, क्रोध, अहंकार के करने से जो पाप होता है वह मुझे लगे। मैं निरअपराधी हूँ। हां ! मेरा यह पाप अवश्य है कि मैं ऐसी कोख से उत्पन्न हुआ जो इस अनर्थ का कारण है।"

यह कह कर भरत फिर रो पड़े।

मैं अभागा हूँ नहीं सन्मान योग।
देखकर मुझको घृणा करते हैं लोग॥
भाग्य में मेरे बदी थी यह दशा।
राम बन को जाये और सुरपुर पिता॥
हो गया रघुकुल का घातक मातु मैं।
होगया इस जग में पातक मातु मैं॥
राम ने मेरा किया क्या लाड़ प्यार।
छोड़ कर बस्ती को पहुँचे जा उजाड़॥
बन के बनवासी उदासी बन गए।
बन के तपसी और उपासी बन गए॥
बन गए श्रीराम बिगड़ा मेरा काज।
मुंह दिखाने में मुझे आती है लाज॥
मैं कहां जाऊं सहारा है कहाँ।
इष्ट मेरा, मेरा प्यारा है कहाँ॥

जी में आता है तजूं इस प्राण को।
क्या करूंगा पाके मैं सन्मान को॥
राम के चरणों में मेरा है सुधार।
राम ही में है मेरा प्रीति व पियार॥
क्या करूं और क्या कहूं मैं हाय राम।
कैसे यह आपत सहूँ मैं हाय राम॥
मात! मुझको आज्ञा दो जाऊं बन।
राम के चरणों में अरपूं देह मन॥
राम दाता और विधाता हैं मेरे।
राम पितु भ्राता हैं माता हैं मेरे॥
मैंने समझा था मेरे स्वामी हैं राम।
यह विधाता होगया क्यों मुझसे बाम॥
क्या मेरा था पाप क्या अपराध था।
राम कहते थे भरत को साधु था॥
मेरे साधुपन का यह परिणाम है।
राम को दुख मुझ से आठों याम है॥

यह कह कर भरत फिर रोपड़े। अपने आपको रोक न के। लोट पोट हो गए। फिर पहली सी बेसुधी की दशा आने गी। कौशल्या ने उन्हें उठाकर फिर अपनी गोद से चिपटा र प्यार किया। सर पर हाथ फेरा। उनकी आंखें खुलीं।

कौशल्या बोली—"अनजान बालक! क्या तू सचमुच नाड़ी हो गया। तू मेरा बच्चा है। यह समझ कि मेरी कोख उत्पन्न हुआ है। जैसे तू वैसे राम! राम और भरत दोनों री दायें बाये आंखें हैं। व्यौहार की दृष्टि से राम बड़े और छोटा भाई है। तुम में कोई अंतर नहीं है। तुम दोनों एक मान हो। बेटे! अब तुम चिन्ता न करो। चिंता करोगे तो ी कोख का अपमान होगा। वैसे कभी कोई तुम्हारा अप-

मान न करेगा।"

"तुमसे क्या कहूँ। तुम्हारे पिता जी ने राम को बनवास दिया। माता ने बल्कल (छाल) वस्त्र सामने लाकर रक्खा। राम ने बाप की आज्ञा को सिर पर रक्खा। माता के वस्त्र का सन्मान किया। न हर्ष, न शोक! जोगी का भेष बनाया। लक्ष्मण ने भी वैसा ही किया। सीता को मैंने रोकना चाहा। वह तीनों के तीनों मेरे रोके नहीं रुके। हंसते खेलते बन को चले गए। यह तेरे बड़े भाई, छोटे भाई और तेरी नई नवेली-भावज का चरित्र था।"

"तू राम को इष्ट कहता है और दुखी होता है। इष्टदेव और उसके भक्त में भेद कैसा। एक भाई ऐसा निष्प्रिय और निष्काम हो और दूसरा यों मन आसक्त और उसके विपरीत हो! आश्चर्य है! संसार दिव्य शक्तियों का खेल है। साक्षी रूप बनकर इस जगत की लीला को देखना चाहिए। न दुख हो न सुख हो? ऐसा है तो तू कौशल्या का पुत्र और राम का भाई! और ऐसा नहीं हैं तो मैं क्या कहूं तू आप समझले।"

भरत को कौशल्या की बातों से धीरज आ गया। पाँव को छुआ। आशीर्वाद लिया।"

इतने में एक मनुष्य ने आकर कहा—"वशिष्ठ जी बुला रहे हैं। कौशल्या से विदा होकर यह सुमित्रादेवी से मिलकर गुरु के पास गये।

छटा समुल्लास

भरत और राम-दर्शन की इच्छा

वशिष्ठ ने भरत को दशरथ के अन्तेष्टि कर्म करनेकी आज्ञा दी। भरत ने शास्त्रानुसार चिता बनवाई और कपूर, घृत, गूगल

और चन्दन की लकड़ी मंगाकर लाश का दाह किया। दस दिन तक क्रिया कर्म किये। दसवें दिन शुद्ध होकर ब्राह्मण, भिखारियों को इतनी दान दक्षिणा दी कि वह अयाच्य होगये।

जब यह सब हो चुका। वशिष्ठ ने सभा एकत्रित की। सबने मिलकर यह प्रस्ताव किया कि भरत को राज करना चाहिये। बहुत दिनों तक राजसिंहासन का शून्य रहना उचित नहीं है।

भरत ने कहा--"आप लोग सच्ची बात कहते हैं। इस देश का राज्य श्रीरामचन्द्र का है। मैं उनका दास हूँ। राजा तो वह हैं। मैं सेवक और दास हूँ। सेवकाई करने में मुझे असमंजस नहीं है। राजा मैं नहीं हो सकता।"

वशिष्ठ बोले—"दशरथ ने जीते जी तुम को राज और राम को बनवास दिया। राम तो उनके कथनानुसार वन को चल गये और क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं किया। जिस दिन उन्हें आज्ञा सुनाई गई उसी दिन और उसी समय उन्होंने साधुओं के वस्त्र धारण करके यहाँ से कूच कर दिया। तुमको भी पिता का बचन मान कर उसे पूरा करना चाहिये।"

भरत कुछ कहने ही को थे कि कौशल्या बोल उठी "हमारे कुल की यह रीति है कि पुत्र पिता का आज्ञाकारी होता है। राम ने बाप का बचन मान कर वन का रास्ता लिया। अब देश और प्रजा की भलाई इसी बात में है कि भरत बचन के दूसरे अं ' का पालन करें। यह धर्म है और यही मर्य्यादा भी है। राम चौदह वर्ष तक अयोध्या में नहीं आयेंगे। उस समय बिना राजा के देश का काजभार और प्रबन्ध कैसे चलेगा! यह असम्भव है।"

भरत ने कहा-"आप लोग जो कहते हैं उचित है और उस के मानने ही में मेरी और देश की भलाई है। लेकिन मैं एक बात कहता हूँ। उसे मान जाइये। सिंहासन पर आसन जमाने से पहले इष्ट देव का दर्शन और पूजा मुख्य धर्म माना जाता है।

राम मेरे इष्ट हैं। मैं पहिले उनका दर्शन करलूँ फिर जो कुछ होगा देखा जायगा। धर्म तो यह था कि राम राजा होते और मैं उनकी सेवा करता। मेरा यह सौभाग्य विधाता ने छीन लिया। पिता जी मुझे राम को सौंप कर परलोक को जाते तो मुझे दुख नहीं होता। दैवइच्छा वश ऐसा नहीं हुआ। अच्छा! इसमें मेरा पराक्रम चल नहीं सकता। लेकिन इतना तो हो सक्ता है कि मैं कुछ दिनों के लिये यहां से चला जाऊँ। राम चित्रकूट में रहते हैं। उनका दर्शन करूँ। वह जो आज्ञा दें उसको सिर पर धरूँ। इसमें न आपकी, न प्रजा की और न देश की कोई हानि होती है और मेरे दासपन को कोई धक्का भी नहीं पहुँचता।

सभा के सब लोग कह उठे। "धन्य है भरत की बुद्धि को। क्यों न हो! राम के छोटे भाई के इस छोटाई के भाव में बहुत बड़ी बड़ाई है। भरत धर्म के पुत्र हैं। हम सब उस प्रस्ताव में सहमत हैं। किसी को किसी प्रकार का विरोध नहीं है और न कोई इसका विरोध कर सकता है। लेकिन इसमें बहुत जल्दी करनी चाहिये। राज का प्रबन्ध बिगड़ रहा है। ऐसे समय में बहुत से शत्रु उठ खड़े होते हैं और काममें विघ्न पड़ जाताहै।

भरत, रानियाँ, गुरू, मन्त्रीगण और सब प्रजा प्रसन्न हो गई। दूसरे दिन प्रातःकाल चलने की सम्मति हुई। जिन-जिन को राम के दर्शन की इच्छा हुई सब अपने अपने ढंग पर तैयारियां करने लगे।

॥ अवध खंड का तृतीय भाग समाप्तम् ॥

चतुर्थ भाग

पहिला समुल्लास

भरत का राम के दर्शन के लिये बन को जाना

भरत राम के दर्शन के लिये चले। सुमन्त ने उन्हें पूरा पूरा वृत्तान्त सुना दिया जो उन्होंने निषाद से सुन रक्खा था।

अनगिनित मनुष्य साथ होगये। एक तो राम के दर्शन की प्रबल इच्छा! दूसरे प्रयाग तीर्थराज की यात्रा, तीसरे चित्रकूट स्वयं उस समय में भी प्रसिद्धि तीर्थस्थान था। रथ, बहली, ऊँट घोड़े, पैदल, सवार थे। राम तो साधुओं के भेष में गये थे। भरत ने राज काज के ठाट का ध्यान रक्खा। वशिष्ठ, सुमन्त, जबालि मंत्रीगण भी साथ हुये।

जब अयोध्या से कूच करके यह शृङ्गपुर में पहुँचे, निषाद गुह के गुप्त समाचार देने वाले कर्मचारियों ने उसे भरत के चित्रकूट जाने की सूचना दी। सुनकर इसे क्रोध आगया। उसने समझा भरत इतनी भीड़-भाड़ लिये हुये राम के मारने को जा रहे हैं। उनको अखण्ड राज करने का विचार हुआ है। उसने अपने सेनापति को बुलाकर कहा—"सिर देने का समय आ गया। राम के काज में मर जाना अच्छा है।" यह सब के सब हथियारों से सजे सजाये गङ्गा के तट पर पहुंचे कि भरत पार न होने पावें।"

मर मिटो, मरो, मरजाओ, मर कर जान दो।
शत्रुघ्न और भरत को उस पार में जाने न दो॥
दोनों को मारो धनुष से, और चोखे बाण से।
भालों, बरछी, छुरे व परसों से और कृपाण से॥

सूरमा हो आज अपनी सूरमाई दो दिखा।
राम के शत्रु भरत को दो मजा इसका चखा॥
धर्म का है युद्ध और तुम राम जी के भक्त हो।
तुम नहीं कायर न लम्पट और न तुम आसक्त हो॥
मर के जाओ स्वर्ग को बलिदान हो जाओ अभी।
दोनों को यमपुर दिखादो उनको पहुंचा दो अभी॥

गुह अभी अपनी सेना को चेता ही रहा था कि सम्मुख से छींक हुई। सेनापति बूढ़ा था। उसने पूछा—"तुम कैसे जानते हो कि भरत राम के शत्रु हैं? वह तो राम के सच्चे भक्त हैं। पहिले उनसे मिलो। वह लड़ने के लिये जारहे हों तो उनका सामना करो और राम को मनाने और लौटाने को चले हों तो उनके सहायक बनो।'

बात ठीक थी। वह फल, फूल और पकवान भेंट के निमित्त लेकर भरत के पास गया। वह निषाद की करनी सुन चुके थे। दोनों भाई उठे। उसे छाती से लगाकर कहा—"हम राम को मनाने और अयोध्या में लौटाने जारहे हैं। तुम भी हमारे साथ चलकर चित्रकूट का रास्ता दिखा दो।"

निषाद प्रसन्न हुआ। सब को गङ्गा के पार लाया। अयोध्या वासियों ने स्नान, पूजा, पाठ और ध्यान किया और जलपान आदि करके भरद्वाज के आश्रम में आये। एकदिन वहां ठहरे। ऋषि ने बड़ी आवभगत की। आसन दिया। खाने-पीने की सामग्री इकट्ठा करदी। दूसरे दिन यह त्रिवेणी के सङ्गम पर गए, स्नान-ध्यान किया:—

गङ्ग जमन बिच सरस्वती त्रिबैनी अस्नाना।
समझे कोई गुरु भक्त जो हो चतुर सयाना॥
त्रिवेणी अस्नान कर गुरु ध्यान लगावे।
चार पदार्थ इच्छित तब निज घट में पावे॥

सुरत चढ़े आकाश को सुन अनहद वाणी।
सुन सुन हंसा मग्न मन सो बने निरवाणी॥
जीवन मुक्त का पद लहे फिर बने विदेही।
काल कर्म की क्रूरता नहीं व्यापे तेही॥

यमुना पार की। वहां से चित्रकूट की सीमा आरम्भ होती है। पर्वत की ओर पग बढ़ाया।

दिन अच्छे थे। समय सुहावना था। पहाड़ हरियाली से लदा हुआ था। सूर्य जब सर पर आता आकाश मण्डल में काली घटाएँ और वायु के झोंके धूप से भरत की रक्षा करते थे। यमुना पार करके भरत पैदल चल रहे थे। निषाद उनके साथ-साथ था। जिस पगडण्डी से राम गए थे भरत उससे कतराकर चलते थे, जिसमें उनका पांव राम के पाँव पर न पड़े। निषाद इस चरित्र को देखकर चकित हुआ।

इसने भरत से पूछा,—"भगवन्! मैं राम के साथ था। मैंने यह दृश्य नहीं देखा। राम के सर पर बादलों की छाया नहीं थी। वह आपके सर पर बराबर रहती है। इसका कारण यह होगा कि राम साधु हैं और आप राजा हैं। राजा के ऊपर छत्र रहता है।"

भरत हँसे "मित्र! इसका कारण यह है कि मैं सूर्यवंश का छोटा बालक हूं। राम श्रेष्ठ पुरुष हैं। बड़ों की इतनी सहायता की आवश्यकता नहीं रहती। बालकों की सँभाल करना प्रकृति का नियम है। राम स्वामी हैं. मैं उनका दास हूँ। ऐसा ही होना चाहिए। ऐसा न होता तो प्राकृतिक नियम में विपरीतता आजाती।"

गुरु समरथ सिर पर खड़े, काहि कमी तोहि दास।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छांड़े पास॥१॥

दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अन्त बहु काल ।
एक पलक में प्रगट होय, क्षण में करूँ निहाल ॥२॥
स्वामी सेवक में बसे, सेवक स्वामी सङ्ग ।
सेवक स्वामी साथ में, करे न चित को भङ्ग ॥३॥
सेवक है मैली नदी, स्वामी निर्मल गङ्ग ।
नदी जो गङ्गा से मिली, प्रगटी गङ्ग तरङ्ग ॥४॥
गगन मण्डल में गुरु रहें, घट में सेवक बास ।
घट और नभ दोनों मिले, एक हैं स्वामी दास ॥५॥

निषाद अपने आप को बड़ा युक्ति वाला समझता था। भरत की बात सुनकर उसकी आंखें खुलीं। पांव पड़कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

दोनों इसी प्रकार बातचीत करते हुए और बात बात में भरत इस माँझी को भक्ति भाव की शिक्षा देते चले।

निषाद ने कहा—"भगवन्! आप रामस्वरूप हैं। आप में और राम में कोई भेद नहीं है। मैंने बहुत बड़ी भूल की थी। आप को शत्रु समझा था। अब मैं खुली आँख से देख रहा हूँ कि राम बिम्ब हैं और आप प्रतिबिम्ब हैं। मेरा ऐसा कहना अनुचित है इसमें द्वैत भाव आजाता है कि आप और राम समान नहीं हैं। भरत राम हैं और राम भरत हैं। समझने में दो और बूझने में एक।"

भरत-"नहीं मित्र! नहीं! राम सिर हैं, मैं उनका पाँव हूं।"

निषाद-"भगवन्! आपकी शिक्षा धन्य हैं। आप बात बात में मुझे दीक्षा दे रहे हैं। पूजने का पदार्थ तो पाँव ही है। मनुष्य किसी के सिर नहीं चढ़ता, बल्कि बड़ों के पाँव ही पड़ता है। राम की बड़ाई का फल आपके पांव छूने से प्राप्त होता है:—

गुरु गोविन्द के रूप हैं, गोविन्द गुरु के रूप ।
गति मति देख चकित भई, को प्रजा को भूप ॥१॥

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किस के लागू पाँय।
गुरू में गोविन्द परख कर, सूझा सुगम उपाय ॥२॥
मन्त्र मूल गुरु वाक्य है, गुरु पद पूजा मूल।
ध्यान मूल गुरु मूर्ती, गुरु दया मेटे शूल ॥३॥

भरत हँसे, "मित्र! तुम राम के सच्चे मित्र हो। राम तुम्हारे हृदय में बस गए हैं और तुम्हारा हृदय चित्रकूट की लीला का दृश्य दिखाता है।"

दूसरा समुल्लास

लक्ष्मण की बेचैनी

भरत निषाद के साथ वार्तालाप करते हुए उस स्थान के निकट पहुँचे जहाँ चित्रकूट की चोटी पर राम की कुटी थी।

वन के पशु-पक्षी राम के आने से अभय होगए थे और निर्द्वन्द विचरते थे। अयोध्या के राज दल को देखकर डर गए और राम की कुटी के इर्द-गिर्द दौड़कर चक्कर लगाने लगे। ऐसा पहिले कभी नहीं हुआ था। यह अनसमझ जीव-जन्तु भी राम की शरणागत में अपनी रक्षा समझते थे।

राम ने कहा—"लक्ष्मण! यह पशु पक्षी क्यों घबराए हुए हैं। क्या पहाड़ पर शिकारी तो नहीं आगए?"

लक्ष्मण बोले—"मैं बाहर जाकर अभी पता लगाता हूं।"

वह बाहर गए। देखा कि हिरन, बारहसिंहे, गाय, भैंस आदि सब भागे चले आ रहे हैं। धूल उड़ रही है। आंखों पर जोर डालकर देखा। कुछ दिखाई नहीं दिया। तब एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गए। देखते क्या हैं कि सूर्य वंश के चमकते हुए झण्डे की ध्वजा धूप में जगमगा रही हैं। झण्डा लहरा रहा है और उसके साथ अयोध्या की सेना भी आरही है। रथ, बहली,

घोड़े, ऊँट, हाथी, पैदल, सवार सब ही उसमें हैं। मन में सोचा - "हो न हो, भरत लड़ने वालों के समुदाय को लिये हुए चले आरहे हैं।" पेड़ से नीचे उतरे। क्रोधातुर हुये। आंखें अँगारा बन गईं।

इसी रूप में राम के पास आकर कहने लगे - "भगवन्! भरत आरहे हैं। पलटन साथ है। आज्ञा दीजिये। मैं अभी जाकर भरत और शत्रुहन दोनों भाइयों को अपने तीक्ष्ण बाण से छेद कर भूमि में लिटा दूँ। उन्होंने क्या समझ रक्खा है! लक्ष्मण के जीतेजी राम का द्रोही जी नहीं सकता। अयोध्या से निकाले गये बनवासी बने, अब भी चैन नहीं आया! चित्रकूट में सेना-दल साज कर लड़ने आये हैं। राम को मार कर अखण्ड राज करने के अहंकार में चूर होरहे हैं। मैंने ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर उन्हें देख लिया। जी में तो आया कि धनुष चढ़ाकर सनसनाते हुये बाणों को उन दोनों शत्रुओं के कलेजों में धँसने के लिये भेजूँ। केवल आज्ञा लेने के लिये चरणों में उपस्थित हुआ हूँ।

क्षण में दोनों भाइयों को मैं अभी कर दूं हनन।
धूल और मिट्टी में लेटेंगे भरत और शत्रुहन ॥१॥
मैं नहीं सेना से डरता शूरमा और शेर हूँ।
जानते हैं सब मुझे मैं धीर और गम्भीर हूँ ॥२॥
बाण बरसा कर करूँगा अवध की सेना को धूल।
आए हैं लड़ने भरत और शत्रुहन क्यों मुझको भूल ॥३॥
सिंहवत रण भूमि में मैं जब उछलता जाऊँगा।
दोनों को पृथ्वी में बेसुध प्राणहन मैं पाऊँगा ॥४॥
दीजिए आज्ञा चखादूँ उनको लड़ने का मजा।
हूँ अकेला मैं नहीं कोई करेगा सामना ॥ ५ ॥

राम हँसे। लक्ष्मण को शान्त किया। उनके वीर भाव की

प्रशंसा करके समझाया—"लक्ष्मण ! तुम नहीं जानते, ब्रह्मा जी कब अपने करतब से प्रसन्न हुये होंगे ! मेरी समझ में उनको उस समय महा आनन्द प्राप्त हुआ होगा, जब भरत की प्रतिमा बनाई होगी। भरत केवल रघुकुल-भूषण नहीं हैं किन्तु वह जगत भूषण हैं। प्रेम-प्रीति की ऐसी मूर्ति संसार भर में कोई नहीं है। भरत अद्वितीय हैं। वह आप अपनी उपमा हैं।"

'अच्छा ! अब बाहर निकल कर देखो। भरत किस प्रकार आरहे हैं। अब बहुत समीप आगये होंगे।"

लक्ष्मण बाहर आये। देखा भरत, शत्रुहन और निषाद तीनों पैदल आरहे हैं। भरत आगे शत्रुहन पीछे और इनके पीछे निषाद है। तीनों पग-पग पर भूमि में दण्डवत् प्रणाम करते हुए कुटी की तरफ बढ़ रहे हैं। मन में लज्जित हुए-"राम सच कहते हैं कि भरत स्नेह और प्रेम की साकार मूर्त्ति हैं।"

लक्ष्मण कुटी में लौट आये। भरत के दण्ड प्रणाम का समाचार सुनाया।

राम ने कहा,—'मैंने तुम्हें पहिले ही सुना दिया कि भरत इस संसार में विलक्षण व्यक्ति हैं।"

तीसरा समुल्लास

बिछुड़े हुओं का मिलाप

भरत ने देखा कि पहाड़ में बसन्त ऋतु छाई हुई है। फूलों की गंध लेने वाले भौंरे गूँज रहे हैं। सुन्दरताई अपने यौवन पर है। नाना प्रकार के फूल उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। भागे हुए पशु-पक्षियों ने राम की कुटी को घेर रक्खा है और इनके समाज को भी भय की दृष्टि से देखते हुये कुटी का आसरा ले

रक्खा है। यह त्रेता युग था। राम का अवतार त्रेता में हुआ है। कहीं कृष्ण ने उस समय जन्म लिया होता तो कुटी के चारों तरफ पशुओं की मण्डली को देखकर अपना ग्वाल-पना भूल गए होते। उनका जन्म द्वापर में हुआ था।

राम ने लक्ष्मण को अगवानी के निमित्त भेजा। भरत और शत्रुघ्न दोनों आँखों से जल बहाते हुये लक्ष्मण से लिपट गये।

धन्य लक्ष्मण धन्य तुम हो, सच्चे सेवक राम के।
भक्ति के भूषण हो तुम, हो भक्त सच्चे राम के॥

लक्ष्मण फिर निषाद से मिलकर सबको कुटी के भीतर लाए। भरत ने देखा जटा-जूट धारण किये हुए वैराग ने युवावस्था का रूप धारण कर रक्खा है। धनुष-बाण कन्धे से उतर कर हाथ में सुशोभित हो रहे हैं। सीता पीछे बैठी हुई खजूर के पत्तों का पङ्खा झल रही हैं। यह दशा देखकर तीनों के तीनों रोते हुए पृथ्वी पर गिरे। लक्ष्मण ने कहा, "भगवन्! भरत आपको नमस्कार कर रहे हैं।" यह उठे और भरत को उठाकर छाती से लगाया। आंसू पोंछे। सिर और माथा चूमा और वही बर्ताव शत्रुघ्न और निषाद के साथ किया। फिर इन तीनों ने सीता-सती के पांव छूये। उसने मन में आशीर्वाद दिया—'राम की अटल भक्ति तुमको प्राप्त हो।"

दण्ड प्रणाम करते समय भरत का धनुष अलग, बाण का तरकश अलग और सिर का मुकुट अलग जा पड़ा। राम की भी यही दशा थी। भरत अपना दुःख वियोग भूल गए। देह की सुध-बुध जाती रही। चन्द्र चकोर की दशा बन गई। वाणी निर्वाणी बन गई। बुद्धि ने अपनी विवेक वृत्ति त्याग दी। मन की चंचलता कोसों दूर भाग गई।

दर्पण आगे सुन्दरी, देख के अपना अङ्ग।
मन निमग्न अनबन बनी, दोनों अगम अभङ्ग॥१॥

दर्पण अन्दर सुन्दरी, बाहर सुन्दर देह।
कौन बिम्ब प्रतिबिम्ब है, उपजा मन सन्देह ॥२॥
राम समाए भरत में, भरत समाए राम।
स्वामी सेवक यों मिले, चित उपजा विश्राम ॥३॥
यह तो गति है अटपटी, सटपट लखे न कोय।
जब मन की खटपट मिटे, झटपट दर्शन होय ॥४॥
दर्शन दृष्टी ने किया, दृष्टी दृश्य समान।
दृश्य दृष्टा दृष्टि मिले, कौतुक देखहु आन ॥५॥
राम भरत की मिलन छवि, वर्णित वरणि न जाय।
कौन कौन है कौन है, बुद्धि न सकी बिलगाय ॥६॥
रूप अरूप में धँस गया, सगुण अगुण गए भूल।
मन बुद्धि विस्मत भए, हुआ भरम निरमूल ॥७॥
विस्माधी दोनों भए, लागी शून्य समाध।
साधन सिद्धि की गम कहां, कौन किसे कहे साध ॥८॥

निषाद ने देखा कि राम और भरत चित्रवत होगए। समयानुसार उसने कहा,—"भगवन्! इस चित्रकूट में एक ही चित्र नहीं है, यह चित्रों का कूट है। बाहर मुनिगण और मातायें चित्राकार होकर आप के सदेह चित्र के दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

राम और सीता दोनों उठ खड़े हुए। सब से पहिले कैकई के पांव छुए। उसने दोनों को छाती से चिपटा लिया। क्या यह वही कैकेई है जिसने राम को बनवास दिलाया?" दैव की गति समझ में नहीं आती। फिर वह जोड़ा सुमित्रा की गोद से लिपट गया और अन्त में कौशल्या के चरणों में गिरा। उसने इसे अङ्क लगाया।

फिर राम ने तीनों के पास जाकर दण्ड प्रणाम किया। सब इन्हें देखकर प्रसन्न चित्त होगए।

चतुर चेतरे सोच मन, तू है चित्राकार।
चित्र खींच ऐसा अगम, नहीं गुण कला विसार ॥

अयोध्या से पलटन की पलटन मिलने आई थी और यह सब राम से मिलने के अभिलाषी थे। राम ने देखा कि सब के साथ मिलने में बहुत समय लगेगा और इन सब का आगत स्वागत करना है। उसी क्षण वहां जितने नर-नारी थे, उतने ही राम बन गए और राम ने एक एक से मिलकर सब को सुखी कर दिया। सबने यही समझा कि राम केवल मुझ ही से मिले हैं, दूसरे उनसे न मिल सके।

जो लोग इस गूढ़ विषय और आत्मिक रहस्य को नहीं समझते उन्हें समझाना बड़ा कठिन है। इनकी समझ बूझ की आँख पर पट्टी बँधी हुई है। इनका दोष नहीं है। यह जानते हुए अनजान हैं। अपने प्रतिदिन के व्यवहार पर दृष्टि डालें तो सुगमता से इसे समझ सकते हैं। लेकिन विद्या की युक्ति प्रतियुक्ति और चंचल बुद्धि के तर्क कुतर्क ने इन्हें ऐसा भ्रम में रक्खा है कि यह सहज सरल और सुगम बात तक को नहीं समझ सकते हैं। देखते हैं कि उनके देह में एक मन है जो व्यापक शक्ति है और एक ही समय में वह चोटी से लेकर ऐड़ी तक रहता हुआ और रोम रोम से मिला हुआ सब के अनेकों काम किया करता है।

एक मन है चोटी से ऐड़ी तलक।
इन्द्रियों में देखलो उसकी झलक॥
आँख से वह देखता है हर घड़ी।
कान से सुनता है वह बातें बड़ी॥
सूँघता रहता है निशदिन नाक से।
बोलता है वाणी अपनी हाक से॥
देखलो मन एक है और काम सौ।
एक रूप है और इसके नाम सौ॥१॥

सिन्धु है और सिन्धु में बूँदें अनेक।
काम कितने करता है और रूप एक॥
बूँद में है लहर में और झाग में।
सिन्धु गाता रहता है हर राग में॥
एक है यह सिन्धु उसके काम सौ।
एक रूप है और उसके नाम सौ॥२॥
है गगन मण्डल जो रवि तेजमान।
किरनों किरनों में वह व्यापा है महान॥
चन्द्र में तारों में है और आग में।
देखलो उस रवि को भाग और त्याग में॥
एक है रवि और उसके काम सौ।
एक रूप है और उसके नाम सौ॥३॥
एक शब्द है कितने कानों में पड़ा।
वह कहीं उखड़ा कहीं जाकर अड़ा॥
गिटकरी है मींड है और है अलाप।
बांसरी की धुन पखावज की है थाप॥
एक है यह शब्द उसके काम सौ।
एक रूप है और उसके नाम सौ॥४॥
एक राम और काम उसके हैं अनेक।
भाव सौ सौ और उसका रूप एक॥
मन में आते हैं तुम्हारे सौ विचार।
तुम बनाओ इनकी सूरत सौ हजार॥
सत है तुम में और सत श्रीराम में।
सत ही सत रहता है सारे काम में॥
भावना से बन गये वह जब हजार।
सबसे जाकर वह मिले फिर एक बार॥

राम युक्तीवान थे योगी थे वह ।
राम बुद्धिवान संयोगी थे वह ॥
राम तो हैं एक इनके काम सौ ।
रूप एक है और इनके नाम सौ ॥५॥

चौथा समुल्लास

पहुनाई

चित्रकूट के पहाड़ पर तम्बू तन गये । भील गौंड़, कोल, किरात इत्यादि ने सुना कि अयोध्या से राम की माता, भाई संबंधी आए हुए हैं । इन बनवासियों ने पंचायतें कीं । "भाइयो ! देखना कोई यह न कहे कि चित्रकूट गए थे और खाने पीने को भी नहीं मिला । ऐसा न हो । इसमें हमारी जाति की हँसी होगी ।" हजारों जङ्गली बात की बात में वहाँ निष्काम कर्म के लिए आगए । इन सब में राम की भक्ति और राम का प्रेम था । राम ने अपने प्रेम से इनके मन को जीत लिया था और इन्होंने अपने प्रेम से राम को बस में कर लिया था ।

कोई पानी लाता है । कोई दूध, दही, फल, फूल, घी लाता है । लकड़ी काटने वालों ने सब के तम्बुओं के सामने लकड़ी और घास फूँस का ढेर लगा दिया । जो कुछ पहाड़ जङ्गल में कन्दमूल चिरौंजी, महोय और अनेक फल मिल सके सबके टीले बना दिए ।

अयोध्यावासी कहने लगे—"राम अवध के राजा होते तो चांदी सोने के सिंहासन पर बैठते । यहां इनका सिंहासन मनुष्यों का हृदय बना हुआ है । यह अब वन को छोड़कर क्यों नगर को जाने लगे । हम अयोध्या के रहने वाले अभागे हैं ।

राम नगर को छोड़कर आये और यह वनवासी भाग्यवान हैं जिनके यहाँ आकर राम ने अपने रहने की कुटी बनाई है।"

सीधे साधे लोग! सीधी सादी बोल चाल। सीधा सादा खाना पीना! जङ्गल में मङ्गल हो गया। इनको इस वन यात्रा से जो सुख प्राप्त हुआ है, सारी आयु कहीं नहीं मिला।

राम प्रेम पूर्वक सबके साथ मिलते थे। यह सब उनकी लीला को देखकर अवध को भूल गये। उसका नाम तक उनके होठों पर नहीं आता था।

शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध आहार का भी मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। एक तो यह राम के प्रेमी थे, दूसरे वन के शुद्ध और पवित्र रहन सहन ने इनको कुछ का कुछ बना दिया। प्रकृति बदल गई। नगर की सभ्यता की जगह जंगल की सादगी ने ले ली।

कोल किरात झूठ नहीं बोलते थे। जो मन में आया मुँह से सुना दिया। इनका सरल स्वभाव और आचरण देखकर नगर निवासी चकित हो गये।

अवसर पाकर गुरु ने सभा की। राम को दशरथ के परलोक गमन का समाचार सुनाया। दुःख तो होता ही है। राम को यह सुनकर शोक हुआ। सीता और लक्ष्मण अधिक शोकातुर होने लगे, तब गुरु वशिष्ठ ने समझाया—"यह प्रकृति का नियम है। राजा प्रजा, ऋषि मुनि, ज्ञानी ध्यानी, मनुष्य पशु सबको प्रकृति का यह ऋण चुकाना पड़ता है। कोई आगे जाता है, कोई पीछे जाता है। जाना सबके लिये है। दशरथ वृद्ध थे। संसार के दुःख और सुख सब देख चुके थे। राम और भरत जैसे सुयोग्य पुत्र संसार में किसे मिलते हैं। वह शोक के योग्य नहीं हैं। ईश्वर करे सबको दशरथ जैसा जन्म-मरण प्राप्त हो! वह बड़े भाग्यवान थे। उनके लिये शोक करना अनुचित नहीं,

तो उचित भी नहीं है।"

इस प्रकार ढ़ारस देकर ऋषि ने राम के हाथों फिर क्रिया-कर्म कराया। वैतरणी के तट पर जाकर उन्होंने पिंडदान आदि करके तिलांजलि दी। एक दिन का व्रत रक्खा और फिर अवधवासियों की सेवा सत्कार में लगे।

इस महमानदारी में राम तो आधार मात्र थे। बनवासियों ने इसमें किसी को अपना साझी नहीं बनाया और उनके प्रेम भाव को देखकर सब में एक प्रकार का परस्पर प्रेम भाव उत्पन्न हुआ। यह बनवासियों को महा भाग्यवान समझने लगे।

गंधर्व, किन्नर, नाग आदि नभमंडल के देवता मनुष्य शरीर धारण किये हुए राम की सेवा में आए और जंगलियों के सत्कार और पहुनाई के भागीदार हुए। यह थे तो सूक्ष्म शरीर वाले लेकिन मनुष्यों के बीच में व्यवहार करने के निमित्ति यह स्थूल शरीरधारी हो गए। अपने सूक्ष्म शरीर में रहते तो वह चाहे सबको देखते इन्हें कोई न देखता। इसलिए सूक्ष्म अवस्था को त्याग कर उन्हें स्थूल रूप धारण करना पड़ा। राम भी इस रहस्य को जानते थे और उनका बर्ताव इनके साथ कुछ और था और लोग इन्हें मनुष्य समझते थे।

हर व्यक्ति के तीन शरीर होते हैं—कारण, सूक्ष्म और स्थूल। कारण जगत् में केवल कारण शरीरधारी बसते हैं और उनका कर्म कारण रूप में होता है। सूक्ष्म शरीर के वासियों के दो शरीर होते हैं—कारण और सूक्ष्म और इनके व्यवहार भी कारण और सूक्ष्म रीति से होते हैं और स्थूल जगत के रहने वालों के तीन शरीर होते हैं-कारण, सूक्ष्म और स्थूल और इन के व्यवहार भी कारण, सूक्ष्म और स्थूल रूप के होते हैं।

सूक्ष्म जगत् में गंधर्व इत्यादि रहते हैं। कारण में नाग आदि और स्थूल जगत् में मनुष्य आदि निवास करते हैं।

स्थूल शरीर का भान जाग्रत में, सूक्ष्म का स्वप्न में और कारण का सुषुप्ति में होता है।

सूक्ष्म और कारण जगत् के रहने वालों में कभी कभी और किसी किसी में यह शक्ति आजाती है कि वह स्थूल रूप में प्रकट होकर लीला करें लेकिन सब के लिये ऐसा नियम नहीं है।

इन शरीरों का चित्र इस प्रकार होता है:—

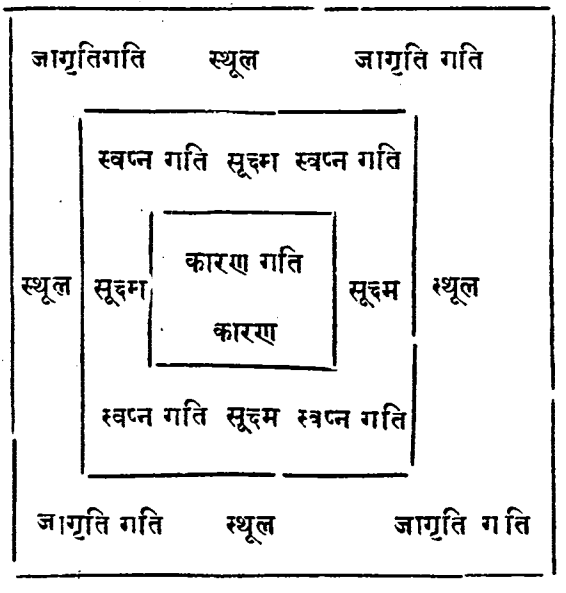

गंधर्व—संस्कृत शब्द गंधर्व (वास) और अर्व (चलने) से बना है जिसमें गंध मात्र वासना है वह गंधर्व हैं। यह सूक्ष्म दिव्य शक्तियां हैं जो प्रकृति में नाचती और गाती रहती हैं।

नाग संस्कृत शब्द नग (पहाड़) से निकला है जो सब की

जड़ और केन्द्र है और जो दिव्य शक्ति सब में लिपटी हुई है। यह कारण है।

मनुष्य मन वाले शरीरधारी को कहते हैं। यह स्थूल है। यह सब देवता चित्रकूट में आकर रहने लगे।

राम रमने वाले जोगी सबके रमता राम हैं।
जोगियों के ज्ञानियों के ध्यान के विश्राम हैं॥
राम के आधार ही पर इस जगत् का खेल है।
राम हैं सबसे मिले और उनका सबसे मेल है॥
राम में विश्राम है आनन्द है और शान्ति।
राम का पल्ला पकड़ने से छुटेगी भ्रान्ति॥
राम में है चित्र सबका राम ही हैं चित्रकूट।
लूटते तुम से बने तो लूटो सद्गति की लूट॥
लूट है भक्ति की लूटो शान्ति विश्राम को।
होठों पर अपने बसालो राम ही के नाम को॥

बनवासियों ने इनकी सब प्रकार पहुनाई की और वह अयोध्या (शरीर) को भूल गये। किसी को तन मन की सुधि न रही।

पांचवां समुल्लास

भरत-राम-सम्वाद

राम के प्रेम का जाल तन गया। उधर सीता ने अपनी माया का ताना-बाना फैला दिया। वह सासों की सेवा में लगी। यह सबसे प्रेम व्यवहार करने लगे। चित्रकूट भक्ति का गए-ढल बन गया। जो है वह सब कुछ भूल भुलैया है। सबके सब इस भूलभुलइयाँ के झूले में झूल गये।

कैकेई मन में सोचने लगी, "मैंने क्या किया! ऐसे पुत्र और पुत्रबधू को मैंने क्यों बनवास दिया! मेरी बुद्धि मारी गई। कुबड़ी ने मुझे बहका दिया! राम अब अवध को चलें और राज करें।" अब कैकेई मोहग्रस्त होगई।

भरत सोचने लगे—"मैं ही इस अनर्थ का मूल कारण हूँ। ऐसे स्वामी को पाकर यह क्या अपराध हुआ! अब तो राम अयोध्या को चलें। इसी में सबकी भलाई है।"

कौशल्या और सुमित्रा राम का मुँह देखकर चकोर गति होरही थीं। उनके प्रेम के केन्द्र राम थे। राजकाज की उनको समझ नहीं रही थी।"

वशिष्ठ अपने आपे में थे।

जब जनक ने सुना कि भरत राम के मनाने के लिये चित्रकूट गये हैं, वह भी सतानन्द दीवान को साथ लिये हुए चित्रकूट में आगए। राम और सीता दोनों उनसे मिले। यह अपनी विदेह गति को भूल गए।

भूले! सब भूले! किसी को राम के सिवा और किसी बात का ध्यान नहीं रहा था। नहीं भूला तो जवालि ऋषि नहीं भूला। यह दशरथ का मन्त्री था और नास्तिक था। यह इस संसार के भोग-विलास और राजकाज के व्यौहार को सब कुछ समझता रहा।

सुमन्त बहुत धीर गम्भीर थे। वह भी राम के प्रेम फाँस में आगए।

अयोध्यावासी पर्वती गँवारों के प्रेम को देखकर मोहित होगए। उनकी पहुनाई की प्रशंसा करने लगे।

इन गँवारों ने उनसे कहा—"हमारी प्रशंसा क्या करते हो! राम की प्रशंसा करो। हमने कुछ नहीं किया। हम से क्या हो सकता है! राम न होते तो हम लूटपाट चोरी-चकोरी कर बैठते

और तुमको अपने कपड़े लत्ते सँभालना कठिन होजाता। राम ने हमारे मन को फेर रक्खा है।"

सचमुच यह केवल सत्संग की महिमा और राम के प्रेम का प्रभाव था। राम ने अपनी स्मरणशक्ति से सब को बांध रक्खा था।

इन भूले हुये नरनारियों को चित्रकूट के अन्न-जल के प्रभाव और राम के भाव ने बावला बना दिया था। यह रहस्य केवल राम ही जानते थे या सीता (उनकी माया) जानती होगी। पामर जीव को इसकी क्या समझ है!

राम ने इनकी दशा देखी। सोचा। यह सब मूढ़ और अज्ञानी बन गए हैं। अपनी मोहनी शक्ति को समेट लिया। उच्चाटन शक्ति की धार चारों ओर बखेर दी और उनकी मति पलटने लगी।

कई दिन बीत गए। वशिष्ठ ने अपने तम्बू के सामने सबको निमन्त्रित किया। राम चारों भाई आए। कौशल्या आदि तीनों रानियाँ आईं। जनक, सुमन्त जावालि आदि आकर बैठ गए।

वशिष्ठ बोले, "चित्रकूट के चित्रों की चित्रकारी ने सब को मोह लिया है। अयोध्या सूनी है। यहाँ ही रहना नहीं है। राजकाज के प्रबन्ध को भी देखना है। सब लोग राम की आज्ञा लो। वह जो कुछ कहैं, सुनो और मानो। उसी के मानने में हम सब का कल्याण है।"

भरत ने मुँह खोला, "राम अयोध्या को चलें, सिंहासन आरूढ़ हों, राजकाज करें और उनका तिलक हो। यह सबकी अभिलाषा है।"

वशिष्ठ, "वाह! वाह! भरत राम के भाई हैं। कैसी अच्छी बात कही है, जो सबको प्यारी लगती है।"

राम "भरत बड़े ज्ञानवान् हैं जिनकी प्रशंसा गुरु अपने

श्रीमुख से कर रहे हैं और मुझे इस बात पर घमण्ड है कि मैं भरत का भाई हूं।"

वशिष्ठ—"सब की यह हृदय से इच्छा है कि राम अयोध्या को लौट चलें। वहाँ उनका राजतिलक हो, वह राजकाज करें और प्रजा को सुख दें।"

राम ने मुँह नहीं खोला।

भरत बोल उठे—"मुझे लज्जा आती है। मैं क्या कहूँ क्या न कहूं! विधाता ने मुझे अपराध का कारण बना दिया। मेरा विश्वास संसार से उठ गया। मैं जो कुछ कहूँगा वह लोगों के हृदय में प्रवेश न करेगा और न किसी को निश्चय आएगा। मेरी प्रार्थना गुरु महाराज से यह है कि वह राम-लक्ष्मण और सीता को अयोध्या लौटा ले जाँय और हम दोनों भाई भरत और शत्रुघ्न बन में रहें। इसमें बहुत लाभ और थोड़ी हानि है। आधा लाभ भी कम नहीं समझा जाता।"

भरत की बात सुनकर सभा का मन समुद्र के समान उमड़ने लगा। देहधारी विदेह होगए। जगत् में किसने कभी ऐसे स्नेह की लीला देखी होगी!

समय और अवसर को देखकर वशिष्ठ जी बोले—"राम! तुम धर्मात्मा हो। सब के घट के बासी हो। यहाँ कोई ऐसा मनुष्य नहीं है जिसके हृदय का भाव तुम न जानते हो। जिस बात में तुम सब की भलाई समझते हो वही और वैसा ही काम करो। भरत का मन इस अवस्था में आरत बना हुआ है और आरत को अपने अर्थ के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता।"

राम बोले—"समय विपरीत है। सोच-समझ से काम लेना है। भरत के आधीन हम सब की भलाई है। वह जो कुछ कहेंगे या करेंगे, सब हमारे अनुकूल होगा।"

भरत ने देखा कि सारा बोझ उनके सिर पर रक्खा जारहा है, वह दुखी होकर भरी सभा में खड़े होगये और नम्रता के साथ सब के ध्यान को अपनी तरफ आकर्षित करते हुए बोले-"मुझ पर गुरु की दया है। मुझे जो कुछ कहना था या कहना चाहिये था गुरुदेव ने आपसे कह दिया। मैं कश्मीर से आया। सुना, राम पैदल साधुओं के भेष में बन को गये। पिताजी मुझे अनाथ कर गये। मैं न इधर का रहा न उधर का! बिनाजल की मछली के समान मेरी दशा हो गई। न कुछ कर सकता था न धर सकता था। राम की तरफ दृष्टि गई। वही मेरे धर्म, अर्थ काम, मोक्ष के केन्द्र हैं। मेरे लिये जो कुछ हैं वही हैं। विधाता ने मेरे मारने में कोई कसर नहीं रक्खी। राम चाहें तो मुझे फिर जीवन दान देसकते हैं। राम मेरी दशा को जानते हैं। जो कुछ मैं कहूंगा वह कम होगा और मेरा कहना सुनना निरर्थक होगा।"

यह कह कर भरत राम के चरणों पर गिरे और धाड़ें मार कर रोने लगे। सारी सभा करुणा के सागर में डूब गई। वशिष्ठ और जनक तक की आँखों में आंसू भर आये।

राम ने भरत को उठाकर छाती से लगा लिया-"धैर्य धरो, जब तुम को मुझ पर इतना विश्वास है तो मैं कब कोई काम ऐसा करने लगा जो तुम्हारे दुःख का कारण होगा!"

इन बचनों से भरत की तो ढाढस बंध गई लेकिन सभासद न जान सके कि राम क्या करेंगे और इनको क्या सूझ बूझ आयेगी।

रामने सभासदों से कहा-"भरत निर-अपराधी और माता कैकेई निर्दोष है। यह सब प्रारब्ध का खेल है। जो मनुष्य बिना समझे बूझे भरत को दोष लगायेगा, वह अपना लोक परलोक बिगाड़ेगा। मैं सब को सुना कर कहे देता हूँ, चाहे लाभ हो या हानि

हो, चाहे यश हो चाहे अपयश हो, चाहे पिताजी का वचन प्रमाण रहे या न रहे, चाहे मेरी प्रतिज्ञा भंग होजाय या अभंग हो, मैं स्पष्ट वाणी में बिना किसी असमंजस के कह रहा हूँ कि इस समय भरत जो कुछ कह देंगे मैं उसे मान जाऊँगा और उनकी वाणी को सर्वोपरि ही समझूँगा।"

अयोध्या के लोग प्रसन्न हो गए कि भरत अवश्य राम को लौटने के लिये कहेंगे। राम का तिलक होगा, राम राज करेंगे, वशिष्ठ और जनक दुविधा में पड़ गए। वह इस वाणी के परिणाम को न समझ सके। देवताओं की मंडली में खलबली पड़ गई। वह डरे कि कहीं ऐसा न हो राम मोहासक्त होकर भरत के कहने में आजांय और उनका सब किया कराया काम निष्फल होजाय। सबको चाहिये कि भरत की शरण में चले जांय और उनके हृदय को प्रेरित करे। इसी में उनका कल्याण होगा।

सब चुप! किसी के मुँह से एक वचन भी नहीं निकला। देवताओं का जादू चल गया। वह मन ही मन में राम को छोड़ कर भरत को मनाने लगे। सच है, जो ईश्वर से मिलने के अभिलाषी हों सारे कर्म धर्म को छोड़कर किसी सच्चे ईश्वर भक्त की शरणागत होजांय और उन्हें ईश्वर की प्राप्ति होजायगी। यह नियम है। यह निष्ठा बहुत प्रबल है और सिद्धि प्राप्त किये बिना नहीं रह सकती।

भरत ने सोचा—"देखो रामचन्द्र जी मेरे लिये सब कुछ करने पर उद्यत हैं यहां तक कि मेरा पक्ष तो रखना चाहते हैं और मेरे लिये अपनी प्रतिज्ञा भंग करना चाहते हैं। संसार में ऐसा स्वामी कहां कोई होगा! और मैं कैसा सेवक हूँ!"

यह सोचकर वह कहने लगे—"कहना सुनना सब हो चुका। अब और कहना सुनना निष्फल है। आपने मेरा पन निबाहा।

अपने पन के निबाह का कुछ भी विचार नहीं किया। आप मुझसे प्रसन्न हैं और गुरु अनुकूल हैं और चाहिये क्या! मैंने कायर बनकर संसार की अपकीर्ति के डर से जो कुछ कहा सुना क्षमा कीजिये! मेरा भाग्य उदय हुआ। माता ने कुटिलाई की पिता जी आपके वियोग में परलोक को सिधारे। ईश्वर ने भी मेरी सहायता नहीं की। देवता अपने अपने स्वारथ के वश हो कर मुझे कठपुतली बनाकर नचा रहे हैं। मुझे सबने मिलकर मारा। केवल आपने मेरी रक्षा की। मैं सेवक के धर्म का भी पालन न कर सका। हां! कुसेवकाई में भी आप प्रणतपाल हुए। अब आप जो चाहें करें मुझे सब स्वीकार है। स्वामी की आज्ञा को सिर पर रखना सेवक का सबसे बड़ा चिन्ह है। मुझे ढ़ाढस हो गई। सारे संशय जाते रहे। जगत जो चाहे मुझे कहे। इसकी मुझे चिंता नहीं है। मुझे तो केवल आपकी प्रसन्नता की कमाई करना है।

सेवक स्वामी एक गति, मति में मति मिलजाय।
स्वामी की मति में रहे, सेवक सोई कहाय॥
राम स्वामी मैं दास हूं, स्वामी मेरे अनुकूल।
मन चिंता सब मिटगई, रहे जगत प्रतिकूल॥
सेवक अपना जान कर, क्षमा कीजे अपराध।
मैं तो किंकर दास हूँ, स्वामी अपार अगाध॥

एक अभिलाषा मन में है, चाहे तो उसे पूरी कीजिये, चाहे न पूरी कीजिये। इसमें भी मैं अहंकारी नहीं होना चाहता। वह यह है कि मैं अयोध्या से अभिलाषापूर्वक तिलक की सामग्री साथ लाया हूँ। अपना तिलक करालीजिए जिसमें लोग यह समझलें कि राजा आप ही हैं और तब मुझे जो सेवकाई का पद आप प्रदान करेंगे मैं शिर पर चढ़ाकर आपकी आज्ञानुसार सेवकाई करता रहूँगा। इस मेरे सेवकपन का निर्वाह भी

आपके हाथ में है ।"

यह कहते हुए ही भरत की आंखों से आंसू की धार बहने लगी।

सभा प्रसन्न होगई। सब वाह! वाह! कह उठे। आकाश के रहने वाले देवताओं ने राम का भाव त्याग कर भरत के शिर पर फूलों को वर्षा की।

भरत जी फिर बोले – "मैं न नीति जानता हूँ, न मुझे धर्म का ज्ञान है। आरत हो रहा हूँ। हृदय की व्याकुलता रह रह कर सता रही है यातो यह हो कि आप सीता के साथ अवध को लौटिए। हम तीनों भाई वनमें रहकर तपस्या करें। राजाओं के लिए उसका सेनापति लड़ता है। राजाओं का राज प्रबंध उसके बदले मंत्रीगण ही किया करते हैं फिर इस वनवास का धर्म सेवक क्यों न पालन कर सकेंगे।"

राम ने भरत को संतोषत किया! "भरत जो कुछ तुम्हें कहना था कह चुके। मैंने सुन लिया और जो कुछ मुझे कहना था मैं भी कह चुका और तुमने सुन लिया। अब कहना सुनना कुछ नहीं है। तुम मेरे भाई और बाप के सच्चे सपूत हो।"

जो लेना हो जल्द ले, कही सुनी मत मान।
कही सुनी जुग जुग चले, आवागवन बधान॥
जो करना हो जल्द कर, कथनी बदनी त्याग।
कथनी बदनी भ्रम है, नहीं भक्ति वैराग॥
चित्रकूट चिंता हरन, मन के लाख चरित्र।
इस परबत पर आय कर, लख लख अलख के चित्र॥
मन के चित्र विचित्र हैं, संस्कार के रङ्ग।
सब के रंग को त्याग कर, गहि अब गुरू का रंग॥
जाय अवध में बास कर, राज काज दल साज।
धर्म कर्म और प्रेम का, जुड़े विचित्र समाज॥

छटवाँ समुल्लास

देवलीला

राम ने कहा। भरत ने सुन लिया। देवता इन दोनों के मुँह को देखने लगे। देवलीला प्रबल होती है। मोहन, मारन, उच्चाटन, वशीकरन आदि इनकी भावनाओं के मंत्र हैं। भावना की धार इनके अन्तःकरण के यंत्रों से निकलती है। वही माया जाल के तंत्र बन जाते हैं। कभी मनुष्य का मन किसी काम में लग जाता है, यह मोहन मंत्र है। कभी वह उकता जाता है, यह उच्चाटन है। जब वह मोह भ्रम को त्याग देता है, तब उसी को मारन कहते हैं और जब किसी को अपने बस में लाना चाहता है तब उसका नाम वशीकरन हो जाता है। इन सब की जड़ मन के अन्दर है और देवता इन तंत्रों से काम लेते रहते हैं। जहां इनके अन्तःकरण से धार निकली वह पोट होजाती है और फैलकर लोगों के अन्तःकरण में समा जाती है।

इन्द्र इन सब तांत्रिक देवताओं का राजा है। उसने देखा राम को चित्रकूट में आए बहुत दिन हो गए। उसने सब के मन में उच्चाटना उत्पन्न किया। सब कहने लगे इस पर्वत पर अब कब तक रहें! यहाँ न खाने का सुख है, न पीने का! दिन प्रतिदिन वही एक समान दृश्य! मनुष्य का मन नित नए खेल देखने का अभिलाषी रहता है।

देवता इनकी दशा को देख कर प्रसन्न हुए। राम, लक्ष्मण, सीता, भरत और शत्रुहन उदासीन थे। जनक, वशिष्ठ और सुमंत साक्षी मात्र थे। इन पर इन देवताओं का मंत्र नहीं चल सका। रानियों में राम का प्रेम तो था किन्तु उनकी दासियां देव तंत्र के आधीन आगईं और उनसे कहने लगीं—"राम को

अयोध्या लेचलो। न जांय तो इन्हें पिता के बचन पालन करने दो।"

सबने इस मंत्र को स्वीकार कर लिया। मुहा मुँह इसी प्रकार की बातें होने लगीं।

राम तो पहिले से ही चाहते थे कि जितनी जल्द यह यहाँ से चले जांय अच्छा है, लेकिन कहते हुए इन्हें संकोच था। इन्द्र ने उनके काम को सरल बना दिया।

सातवाँ समुल्लास

भरत का अयोध्या की ओर लौट जाना

चित्रकूट के चित्रों की चित्रकारी कोई कहाँ तक और कब तक देखे! उसके लिये थोड़ा सा समय नियत है। स्वप्नावस्था के दृश्य अस्थाई नहीं होते। इसके ऊपर और नीचे जाग्रत और सुषुप्ति (के दृश्य) भी तो रहते हैं। देख लिया तो देख लिया।

मन का खेल विचित्र है, चित्रकूट समुदाय।
देखत-देखत मिट गया, देख के गया भुलाय॥
मन की गति अति अटपटी, खेल खेल का खेल।
खेल खेल खेले कोई, खेल से मन को मेल॥
साधू साधन में रहे, खेले चित्र के खेल।
चित्रकूट चिंता हरन, वैतरनी से मेल॥

कई दिन बीत गये। कोल, किरात, भील और गोंडों की जंगली पहुनाई से सब का मन उकता गया। स्वप्न में भोग की तृप्ति नहीं होती। जब कोई प्रेत सूक्ष्म मँडल के फल से तृप्त नहीं होता तब किसी जीवित प्राणी के सर पर खेलने आता है। इसे दक्षिण देश या द्रवड़ भाषा में 'अङ्ग भरना' कहते हैं और इस

दशा में वह उन पदार्थों को मांगता है जिनकी उसे प्रबल रुचि होती है। तुमने देखा होगा स्वप्न में सैकड़ों लोटे पानी पीगये प्यास नहीं बुझी। प्यास तो तब ही बुझेगी जब जाग्रत का पानी पीओगे।

साधन अवस्था चित्रकूट में ही रहती है। इसके पश्चात् चाहे जाग्रत में चाहे सुषुप्ति में चले जाओ।

राम ने कहा-"जहाँ रहते बहुत दिन होगये। अवध सूना पड़ा है। भरत रहस्य को समझ गये हैं। अब जल्द लौट जाना चाहिये।"

किसी ने पूछा-"भरत ने क्या समझा?"

राम ने उत्तर दिया-"भरत मेरे रूप हैं। मुझमें और भरत में भेद नहीं है। मैं भरत का हूँ और भरत मेरे हैं। भरत संस्कृत धातु 'भरी (पालन, पोषण)' से बना है। उनका काम प्रजा के पालन पोषण का है। वह इस अवध (शरीर) के राजा हैं। दशरथ ने यह काम उन्हें सौंपा है। मैं रमता राम हूं। मुझे रमने और रमण करने का काम दिया गया है। भरत इसे अच्छे प्रकार समझ गये हैं और उन्हें कुछ समझाना बुझाना नहीं है। मैं चौदह वर्ष बन में रह कर फिर अवध में भरत से आकर मिलूँगा और वह मेरे चौदह स्थलों (५ कर्मेन्द्रियां, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ और ४ अन्तर करण के रमने में अब बाधक न होंगे।"

वशिष्ठ ने पूछा—"भरत! क्या तुमको कुछ कहना है?"

भरत ने उत्तर दिया:—

मैं सेवक हूं राम का, स्वामी मेरे राम।
सेवकाई का धर्म है, सेवक हूँ निःकाम॥
अपना मुझ में कुछ नहीं, नहीं शरीर नहीं मन।
सब कुछ अरपा राम को, यही है युक्ति जतन॥
राम हैं मेरे आत्मा, मैं हूँ राम का दास।

राम नाम चित में बसा, राम से पास सुपास ॥
एक राम को जानकर, सब का कर दिया त्याग।
सब में व्यापक राम हैं, खुले हमारे भाग ॥

वशिष्ठ—"तो अब चित्रकूट से कूच करना चाहिये। मनोरथ सिद्ध हो गया।"

राम के पास कुछ देने को नहीं था। आये थे पैदल। कोल किरात ने एक जोड़ा लकड़ी का खड़ाऊँ भेंट किया था वह भरत को दिया। भरत ने उसे अपने सिर पर रख लिया।

राम लक्ष्मण और सीता बारी बारी पर सब से मिले, जनक वशिष्ठ, सुमंत सब को प्रणाम किया और फिर पहिले के समान सारे पुरवासियों से एक-एक करके मिले। इन्द्र ताक में था कि कहीं इनमें फिर राम का प्रेम न आजाय। वह अपने उच्चाटन मंत्र का जाप करता रहा।

सीता ने तीनों सासों से मिल कर प्रार्थना की "माताओ! दैव प्रबल है। सेवा के समय बनवास है। मेरा अपराध क्षमा हो।" सबने उसे आशीर्वाद दिया।

सीता फिर जनक का पाँव पकड़ कर रो पड़ी। जनक ने उसे देखा कि यह चित्रकूट के पर्वत पर तपस्या की चित्र बनी हुई है, समझाया बुझाया स्त्री का धर्म बताया।

और सब राम से बिदा होकर उलटे पांव वहाँ से सिधारे।

भरत अयोध्या के समीप यमुना गंगा शृङ्गपुर पार करके आये। तपस्वियों का भेष बनाया। सिर पर जटा जूट धारण किया। सिंहासन पर राम का खड़ाऊँ रक्खा। आप उसके नीचे बैठ कर राज का काम-काज करने लगे और उजड़ी हुई अयोध्या फिर बस गई। भरत ने अयोध्या को अपनी राजधानी नहीं बनाई। वह नंदी गांव में रहकर राज धर्म का पालन करते थे और योगियों के भेष में केवल कंदमूल फल के आहार पर

रहते थे।

चलते समय राम ने कहा था-"मैं १४ वर्ष बिता कर अयोध्या में आजाऊँगा" वह इसी आशा पर उनके लौटने के दिन गिना करते थे।

❀ महारायण का दूसरा अवधखंड समाप्त ❀